वैराग्यमूर्ति जम्बूकुमार



कवयिता
राजस्थानकेसरी अध्यात्मयोगी
उपाध्याय श्री पुष्कर मुनिजी



प्रकाशक
तारक गुरु जैन ग्रन्थालय
शास्त्री सर्कल, उदयपुर

श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थमाला पुष्प १२५

❀ वैराग्यमूर्ति जम्बूकुमार

❀ कवयिता
राजस्थानकेसरी अध्यात्मयोगी
उपाध्याय श्री पुष्कर मुनिजी

❀ सपादक —
श्री देवेन्द्रमुनि शास्त्री
श्री नेमीचदजी पुगलिया

❀ प्रथम बार
वि० स० २०३६ श्रावण पूर्णिमा
ई० सन् १९७९ अगस्त

❀ प्रकाशक
श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय
शास्त्री सर्कल, उदयपुर (राजस्थान)

❀ मुद्रण
श्रीचन्द सुराना के लिए
श्री विष्णु प्रिंटिंग प्रेस, आगरा

❀ मूल्य बारह रुपये सिर्फ

समर्पण

त्याग और वैराग्य के जाज्वल्यमान नक्षत्र
श्रमण संस्कृति के देदीप्यमान अमर राही,
आर्य जम्बू की परम्परा के पवित्र पट्टधर,
जिन्होंने मुझे साधना के पथपर बढ़ने की
पवित्र प्रेरणा दी,
उन्हीं परम श्रद्धेय स्व० महास्थविर
श्री ताराचन्द जी महाराज की
पुण्य स्मृति में
सभक्ति समर्पित ।

—उपाध्याय पुष्कर मुनि

प्रकाशकीय प्रकाश

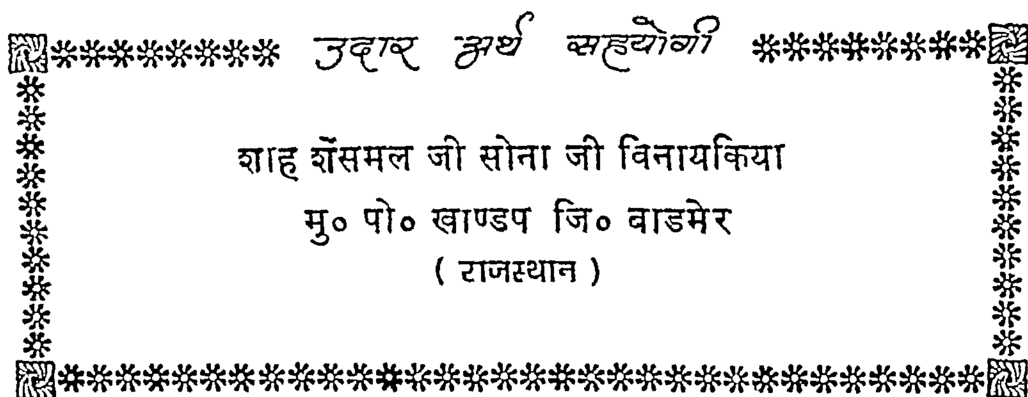
श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय नित्य-नूतन उत्कृष्ट, सरस साहित्य अपने प्रबुद्ध पाठको को समर्पित करने मे अपार आनन्द की अनुभूति करता रहा है। उसने प्रत्येक विधा मे साहित्य प्रदान किया है। साहित्य के क्षितिज पर समय-समय पर नूतन मूल्य, नूतन प्रतिमान, नूतन बिब और नूतन शिल्प का उदय होता रहा है। प्रत्येक साहित्य का अपना उज्ज्वल इतिहास और दर्शन होता है। कितने ही साहित्यकार परम्परा की दृष्टि से लिखते है तो कितने ही साहित्यकार नित नूतन विधाओ में लिखते रहते है। शैली की दृष्टि से कितने ही साहित्यकारो की शैली सक्षिप्त होती है तो कितनो की व्यास होती है। कितने ही साहित्यकार सकलन प्रिय होते हैं तो कितने ही साहित्यकार मौलिक चिन्तन प्रधान लिखना पसन्द करते है। जो साहित्यकार जितना अधिक सवेदनशील होगा उसका साहित्य उतना ही प्रभावशाली होगा। जिस साहित्यकार मे सवेदन का अभाव है वह उतना प्रखर प्रभावोत्पादक नही लिख पाता। उपाध्याय श्रद्धेय श्री पुष्कर मुनिजी महाराज एक सवेदनशील कवि है। उनके साहित्य मे जीवन-निर्माण की प्रबल प्रेरणा रही हुई है। भौतिकवाद की चकाचौंध मे फँसे हुए व्यक्तियो को वे आध्यात्मिक उत्कर्ष का मार्ग बतलाते हैं। यही कारण है कि उनके साहित्य मे जीवन के शाश्वत तथ्य रहे हुए हैं।

"वैराग्यमूर्ति जम्बूकुमार" श्रद्धेय उपाध्याय श्री की एक उत्कृष्ट साहित्यिक रचना है। श्रद्धेय सद्गुरुवर्य समय-समय पर लिखते रहते है। कभी-कभी वे गद्य मे लिखते हैं तो कभी पद्य में। गद्य साहित्य की अनेक उत्कृष्ट कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। और कितनी ही कृतियाँ प्रकाशनाधीन हैं। पद्य साहित्य मे भी उनकी अनेक कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी है। ऐतिहासिक पुरुषो पर उन्हे लिखना अधिक पसन्द है। यही कारण है ऐतिहासिक व्यक्तियो से सम्बन्धित अनेक प्रसग उनके कविता साहित्य मे उतरे हैं। **'ज्योतिर्धर जैनाचार्य' 'विमल विभूतियाँ'** के पश्चात् **'आर्य जम्बू'** का पवित्र चरित्र प्रकाशित हो रहा है। श्रद्धेय सद्गुरुवर्य द्वारा लिखे

हुए अनेक चरित्र अभी तक अप्रकाशित है । हमारा विचार उन सभी को प्रकाशित करने का है जिससे सद्गुरुवर्य के काव्य-साहित्य का पूर्ण परिचय पाठको को हो सके । प्रवचन, निवन्ध, और जैन कथाओ के अतिरिक्त अन्य साहित्य भी प्रकाशित करने हैं । इस दृष्टि से हमारा प्रयास निरन्तर चल रहा है ।

श्री तारक गुरु, जैन ग्रन्थालय एक विन साम्प्रदायिक शुद्ध साहित्यिक सस्थान है, जिसका लक्ष्य है उत्कृष्ट जीवनोपयोगी साहित्य का प्रकाशन करना । उसका सम्पूर्ण साहित्य जन-जन के मानस मे स्नेह सद्भावना का संचार करता रहा है, सगठन की निर्मल भावना उद्बुद्ध करता रहा है । दिन प्रतिदिन महगाई वढती चली जा रही है । यही कारण है कि साहित्य के प्रकाशन में भी अत्यविक व्यय होता है । यदि उदार दानी महानुभावो का हार्दिक अर्थ सहयोग हमें सप्राप्त होता रहे तो हम लागत मूल्य से भी कम मूल्य में साहित्य देना पसन्द करेगे । हमें आशा ही नही अपितु दृढ विश्वास है कि समाज का सतत सहयोग प्राप्त होता रहेगा जिससे हम अपनी योजना को मूर्त रूप दे सकेगें ।

मत्री
श्री तारक गुरु जैन ग्रथालय
उदयपुर
(राजस्थान)


उदार अर्थ सहयोगी

शाह शेंसमल जी सोना जी विनायकिया

मु० पो० खाण्डप जि० बाडमेर

(राजस्थान)

प्रस्तुत प्रकाशन मे आपकी ओर से उदारतापूर्वक

अर्थ सहयोग प्राप्त हुआ

तदर्थ बहुत-बहुत धन्यवाद



प्रस्तावना

शान्ति के सुमधुर क्षणो मे लिखित कोमल कान्त पदावली, कमनीय कल्पनाएँ और भव्य भावनाओ की हृदयस्पर्शी भाषा काव्य है। काव्य सहज रूप से तरगित निर्मल भावो का सहज, सरस और सरल प्रकाशन है। काव्य मे अनुभूति की मधुरता और विचारो की पवित्रता तथा जीवन को परिष्कृत करने की क्षमता रहती है। काव्य के पवित्र पाथेय को प्राप्त कर जन-जीवन धार्मिक, नैतिक और सास्कृतिक सन्तरण की क्षमता को प्राप्त करता है। काव्य जन-जीवन की दीप्ति का सरस चित्रण है। यह सत्य है कि राष्ट्रीय, सास्कृतिक, धार्मिक, साम्प्रदायिक व जातीय भावनाएँ काव्य मे मूर्त रूप ग्रहण करती है।

काव्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे यदि हम चिन्तन करे तो कह सकते है काव्य का प्रादुर्भाव मानव जीवन की सभ्यता के उषाकाल मे हुआ। वह अपने रूप माधुर्य तथा रसमयी भावधारा के कारण जन-जन के जीवन को अतीत काल से ही आलोकित करता रहा है। अग्नि पुराणकार[1] का अभिमत है कि अनन्त अपार काव्य जगत् मे कवि ही केवल एक प्रजापति है।"

वैदिक युग मे कवि प्रकृति नटी की सौन्दर्य-सुषुमा को निहार कर और उसके दिव्य तथा भव्य रूप पर आकृष्ट हुआ। उषा सुन्दरी के सुन्दर रूप ने भी उसकी हृत्तन्त्री के तार को झनझनाया। ज्योतिर्मय सूर्य की जाज्वल्यमान रश्मियो ने, चारु, चन्द्र की चचल किरणो ने सन्ध्या की सुहावनी रमणीयता ने भी उसके मन को मुग्ध किया। उमड घुमड कर आती हुई घटाओ ने, कल-कल छल-छल बहती हुई सरिताओ ने, गगनचुवी पर्वतमालाओ ने उसके मन को लुभाया, जिससे काव्य का सृजन हुआ। उसने उस प्राकृतिक सौन्दर्य और लावण्य को वाणी के फलक पर चित्रित किया। इस तरह कल्पना और भावना का गहन सश्लेषण काव्य मे प्रस्फुटित हुआ है। काव्य की निर्मल धारा प्रकृति के सौन्दर्य से आगे बढी, वह मानव मन का विश्लेषण करती हुई आत्मा और परमात्मा की दार्शनिक गुत्थियो को सरस रूप मे

---

१ **अपारे काव्य ससारे कविरेक प्रजापति ।**
यथास्मै रोचते विश्व तथेद परिवर्तते ॥

—अग्नि पुराण

सुलझाती हुई आध्यात्मिक चिन्तन को मूर्त रूप देती हुई अनेक मानदण्डो को पार करती है। जीवन के महत्त्वपूर्ण तथ्य और सत्य को उट्टंकित करने मे काव्य का अपूर्व योगदान रहा है। विपय, भापा, भाव, छन्द, अलकार आदि विविध दृप्टियो से काव्य के विकास का सहज परिज्ञान होता है।

सुदूर अतीत काल से ही जैन मूर्धन्य मनीपी गण विविध भापाओ मे विविध विपयो पर विविध विधाओ मे लिखते रहे है। उन्होने काव्य धारा को विपय की व्यापकता और गरिमा ही प्रदान नही की, रूप की विविधता और शिल्प की महजता भी दी है। उनकी काव्यधारा वासना के क्षार जल मे विलीन नही हुई। किन्तु सास्कृतिक परम्परा की विभिन्नता के कारण सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र के क्षीर समुद्र मे विसर्जित हुई। उन्होने चतुर्वर्ण व आश्रम व्यवस्था का चित्रण न कर, कहा कि आत्मोत्थान के लिए उसकी तनिक मात्र भी उपयोगिता नही है। आत्मोत्थान के लिए तो पवित्र चरित्र की आवश्यकता है। उसके लिए श्रमण व श्रावक के जीवन के नियमोपनियमो का पालन अनिवार्य है।

जैन काव्य साहित्य मे नायक के रूप मे राजा, श्रेष्ठी, सार्थवाह, धर्मपरायण व्यक्ति तथा तीर्थंकर आदि रहे हैं। प्रारभ मे भले ही उनका जीवन पाप की कलिमा से लिप्त रहा हो, अर्थ और काम के दलदल मे फँसे रहे हो। पर अन्त मे वे सयम साधना के द्वारा इन्द्रिय-दमन, मनोमथन, आत्ममज्जन कर अपने जीवन का चरम व परम विकास करते हैं। कथावस्तु श्रामणिक परम्परा से सम्बन्धित अथवा लोक-प्रचलित जीवन-तथ्यो पर आधृत होती है। उसमे आत्मा के अमरत्व का विश्लेपण करने हेतु जन्म जन्मान्तरो के सस्कार किस प्रकार अपना प्रभाव दिखाते है यह चित्रण स्पप्ट रूप से दृग्गोचर होता है। चरित्र-चमत्कार के साथ ही दार्शनिक सिद्धान्तो का प्रतिपादन यत्र-तत्र किया गया है। जैन काव्यकार आचार मे अहिंसा, विचार मे अनेकान्त के पवित्र पाथेय को लेकर आगे वढते हैं और साथ ही कर्मवाद का गभीर विश्लेषण करते हैं। उनके काव्य का अन्तिम लक्ष्य जीवन को पवित्र पथ पर वढाना है। जिससे वह मोक्ष को सप्राप्त कर सके। उन्होने कर्मकाण्ड, ईश्वर-कर्तृत्ववाद, जातिवाद, पुरोहितवाद का निरसन कर सदाचार की सुदृढ भित्ति पर व्यक्तित्व की उज्ज्वल प्रतिमा उट्टंकित की हैं। मिथ्यात्व के कारण दिग्भ्रान्त मानव की तरह साधक साधना से भ्रष्ट न हो जाय, अत भव-भ्रमण का मूल कारण मिथ्यात्व है और उसका सहयोगी कषाय है, इन दुर्गुणो से वचने पर अत्यधिक वल दिया गया है। जैन कथाकारो ने कथा मे चमत्कार व रस पैदा करने के लिए शृङ्गार रस का आश्रय नही लिया किन्तु वासना का विरेचन कर प्रशम निर्वेद की उत्पत्ति पर अत्यधिक वल दिया। इस प्रकार जैनकाव्य साहित्य की शताधिक विशेपताएँ है। उन सभी का विश्लेषण करना यहाँ सभव नही है।

"वैराग्यमूर्ति जम्बू" परम श्रद्धेय सद्गुरुवर्य उपाध्याय श्री पुष्कर मुनिजी महाराज के द्वारा रचित एक सरस काव्य है। जैन साहित्य के इतिहास मे आर्य जम्बू की गौरव गरिमा अत्यन्त श्रद्धास्निग्ध शब्दो मे गायी गई है। वह ऐसा विशिष्ट व तेजस्वी व्यक्तित्व है जिसके जीवन की दिव्य प्रभा आज भी जन-जीवन को आलोकित कर रही है। उसका जीवन क्षीरसागर के सदृश है जिसका न कोई किनारा है न कोई सीमा है। जिधर से भी उसका पान किया जाय उधर से वह मधुर ही नही, अतिमधुर है।

आर्य जम्बू का नाम सर्वप्रथम हमे आगम साहित्य मे मिलता है। श्रमण भगवान महावीर अतिम तीर्थंकर थे। पाश्चात्य और पौर्वात्य सभी मूर्धन्य मनीषी उनका परिनिर्वाण ई० पू० ५२७ मानते है। भगवान महावीर के पश्चात् उनके प्रथम गणधर इन्द्रभूति गौतम को केवलज्ञान और केवलदर्शन उपलब्ध हुआ। बारह वर्ष तक धर्मोपदेश प्रदान करते हुए वे परिनिर्वाण को प्राप्त हुए। उनके परिनिर्वाण के पश्चात् गणधर सुधर्मा केवलज्ञानी बने। और आठ वर्ष तक केवली के रूप मे विचरण करते रहे। सौ वर्ष की अवस्था मे मासिक अनशनपूर्वक राजगृह के गुणशील चैत्य मे उनका परिनिर्वाण हुआ।

आर्य जम्बू ने भगवान महावीर परिनिर्वाण के सोलह वर्ष पूर्व मगध की राजधानी राजगृह मे जन्म लिया। और महावीर के परिनिर्वाण के सवत् एक मे दीक्षा ग्रहण की आर्य सुधर्मा के सन्निकट। श्रमण बनने के पश्चात् वे महान् जिज्ञासु बनकर आर्य सुधर्मा से जिज्ञासा प्रस्तुत करते हैं कि श्रमण भगवान महावीर ने क्या कहा? वर्तमान मे जो आगम साहित्य उपलब्ध है उसका अधिकाश भाग आर्य सुधर्मा के द्वारा जम्बू को सुनाया गया है। आगम साहित्य का आरभ उनकी जिज्ञासा से प्रारभ होता है। उनके मन मे अमुक तथ्य को जानने की श्रद्धायुक्त जिज्ञासा पैदा होती है। इससे यह स्पष्ट परिज्ञात होता है कि जम्बू की वृत्ति मे वे ही तत्त्व हैं जो सम्पूर्ण दर्शनशास्त्र की उत्पत्ति के मूल तत्त्व रहे हैं।

दर्शन शास्त्र के इतिहास मे यूनानी दर्शन, पश्चिमीदर्शन और भारतीय दर्शन ये तीन मुख्य है। यूनानी दर्शन का प्रवर्तक अरिस्टोटल है, उसका मन्तव्य है कि दर्शन का जन्म आश्चर्य से हुआ है। पश्चिम के प्रमुख दार्शनिक डेकार्टे, कैंट, हेगेल आदि ने दर्शन शास्त्र का उद्भावक तत्त्व सशय माना है। भारतीय दर्शन का जन्म जिज्ञासा से हुआ है। उपनिषद् साहित्य मे जिज्ञासा से ही विराट् साहित्य का सृजन हुआ हैं। वही स्थिति आगम साहित्य की भी है। जम्बू की जिज्ञासा मे एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि वे प्रश्न के लिए ही प्रश्न नही करते, अपितु समाधान के लिए प्रश्न करते है। उनकी जिज्ञासा मे सत्य की बुभुक्षा रही हुई है। उनके सशय मे समाधान की गूंज है। उनके कौतूहल मे विश्व वैचित्र्य को समझने की तड़प है। यही कारण है कि आर्य सुधर्मा अपना

अमूल्य समय जम्बू के प्रश्नों के समाधान में देते हैं। जम्बू अपनी जिज्ञासा का सही समाधान प्राप्त कर कृतकृत्य हो जाते हैं। और वे विनयपूर्वक कह उठते हैं—से वं भंते! से वं भंते! तहमेव भन्ते!'—प्रभु, जैसा आपने कहा है वह ठीक है, वह सत्य है। मैं इस पर पूर्ण श्रद्धा करता हूँ।

गुरु के उत्तर पर श्रद्धा की यह अनुगूंज वस्तुतः प्रश्नोत्तर की एक आदर्श और अनुकरणीय पद्धति है। इससे प्रश्नकर्ता के समाधान की स्वीकृति तो है ही, साथ ही उत्तर प्रदान करनेवाले के प्रति कृतज्ञता व श्रद्धा की भव्य भावना भी व्यक्त होती है।

आचारांग[2], सूत्रकृतांग[3], स्थानांग[4], समवायांग[5], भगवती[6], ज्ञातृधर्म कथा[7], उपासक दशांग[8], अन्तकृद्दशांग[9], अनुत्तरोपपातिक[10], प्रश्न व्याकरण[11], नन्दी[12], निशीथ[13], निरयावलिका[14], दशवैकालिक[15], कल्पसूत्र[16] प्रभृति श्वेताम्बर आगम साहित्य का प्रारंभ जम्बू की जिज्ञासा से ही हुआ है। पर, आगम साहित्य में उनकी प्रबलतम जिज्ञासा का उल्लेख तो बहुत हुआ है, किन्तु उनके जीवन के सम्बन्ध में वह मौन है।

जम्बू के जीवन के सम्बन्ध में सर्वप्रथम ५-६वीं शताब्दी के समर्थ साहित्यकार संघदास गणी ने अपने महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'वसुदेव हिंडी' में जम्बूकुमार की कथा दी है। वे अन्तिम केवली हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ प्राकृत भाषा में निबद्ध है। कथा साहित्य

---

२. आचारांग १-१-१
३. सूत्रकृतांग १-१, २-१-१; २-३-४३; २-४-६३, २-७-८१
४. स्थानांग १-१
५. समवायांग १-१
६. भगवती १-१-४
७. ज्ञातृधर्म कथा १-४· ५-३१/३२
८. उपासकदशांग १-१
९. अन्तकृद्दशांग प्रारम्भ
१०. अनुत्तरोपपातिक-प्रारंभ
११. प्रश्न व्याकरण संवर और आश्रव का प्रारंभ
१२. नन्दी, गाथा २२
१३. निशीथ चूर्णि ७
१४. निरयावलिका १-१
१५. दशवैकालिक ६
१६. कल्पसूत्र स्थविरावली

मे वसुदेव-हिंडी का गौरवपूर्ण स्थान है। कथा की उत्पत्ति मे जम्बूस्वामी चरित्र, जम्बू और प्रभु का सवाद, आदि का चित्रण है। यही कथानक उसके पश्चात् के कवि व लेखको का मूल आधार रहा है।

दिगबर परम्परा मे "तिलोयपण्णत्ति" मे जम्बू के सम्बन्ध मे कुछ सूचन है। और उस सूचन को गुणभद्राचार्य ने उत्तरपुराण मे मूर्त रूप दिया है। उत्तर पुराण मे जम्बू चरित्र सक्षेप मे चित्रित किया गया है। इस तरह श्वेताम्वर और दिगबर दोनो ही परम्पराओ मे जम्बू के पवित्र चरित्र का वर्णन हुआ है। और उसी मूल आधार पर सस्कृत, प्राकृत, अपभ्र श और प्रान्तीय भाषाओ मे सौ से भी अधिक रचनाएँ उपलब्ध है। दोनो ही परम्पराओ के कवियो ने अपनी परम्परा की दृष्टि से जम्बू पर लिखा है। विस्तार भय से मै यहाँ पर उनका परिचय नही दे रहा हूँ।

आधुनिक युग मे भी जम्बू पर पन्द्रह से भी अधिक ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। जम्बू का निर्मल चरित्र केवल जैनविज्ञो तक ही सीमित नही रहा है, अपितु अन्य विज्ञो ने भी जम्बू पर लिखा है। दादूपथी कवि तुलसी रचित 'जम्बू सर प्रसग' तथा रामस्नेही सम्प्रदाय के सुखरामजी और हरखारामजी के 'जम्बू चरित्र' प्राप्त होते है। इस तरह जम्बू स्वामी के चरित्र लेखन की परम्परा वहुत ही विस्तृत रही है।

परम श्रद्धेय राजस्थानकेसरी उपाध्याय श्री पुष्कर मुनिजी महाराज स्थानकवासी जैन समाज के एक तेजस्वी नक्षत्र है, उनके द्वारा रचित आर्य जम्बू एक विशुद्ध साहित्यिक रचना है। हिन्दी काव्य की परम्परा मे यह एक खण्ड काव्य है। काव्य की प्रबन्धात्मकता के साथ ही सगति का समिश्रण होने से उसमे चार चाँद लग गये है। पारस्परिक सवादो ने तो काव्य की कथावस्तु मे प्राण फूँक दिये हैं। काव्य की प्रमुखतम सभी विशेषताएँ इसमे उपलब्ध है। कवि ने हिन्दी साहित्य के उपवन को अभिनव धारा से सिंचित किया है।

वैराग्यमूर्ति जम्बूकुमार मे मुख्य रूप से राधेश्याम छन्द का उपयोग हुआ है। विभिन्न राग-रागनियो से कविता कामिनी को न सजाकर एक ही लय मे प्रस्तुत कर अपनी अभिनव एव प्रशस्त रुचि का परिचय दिया है। विविध घटनाओ और भावो को व्यक्त करते हुए कवि ने अत्यन्त सुकुमार पदावली का प्रयोग किया है। उदाहरण के रूप मे देखिए —

परम प्रभावक प्रभव के, परम पूज्य गुरु, आप।
जम्बूजी की जीवनी, पूर्णतया निष्पाप ॥

× × × ×

बोले बिना बिना डोले ही, और बिना खोले ही आँख।
अनुमति दे दी है दीक्षा की, भोले पति के सम्मुख झाँख ॥

देता दान मान भी देता, होने देता मान नहीं।
मान दान का होना क्या है दाता का अपमान नहीं॥

प्रस्तुत काव्य में, कवि ने मानव की भावनाओं को प्राञ्जल करने हेतु यत्र-तत्र नैतिक जीवन का उपदेश भी प्रदान किया है। जैसे—

स्वास्थ्य विरोधी द्रव्य मिलाकर, द्रव्य कमाने वाले जन।
धन का सपना नहीं देखते, केवल खुश कर लेते मन॥

× × × ×

शक्ति संगठन में होती है, इसीलिए सब रहते एक।
सभी एक हों सभी नेक हों, इसमें ही है सिद्धि अनेक॥

कवि ने निराशावाद का खण्डन करते हुए प्रगति के पथ पर बढ़ने की प्रेरणा दी। उसने कहा—

चलने वाले राही ही तो, रास्ता भूला करते हैं।
डाली टूटा करती उनकी जो नर झेला करते हैं॥
गिरते जो घोड़े चढ़ते वे, नहीं पिसारी गिर सकती।
उपल बीननेवाली बुढ़िया, क्या सेना से घिर सकती॥

आधुनिक शिक्षा-पद्धति पर कवि ने व्यंग्य कसते हुए कहा—जो शिक्षा बालकों में विनय की भावना न भरती हो, विवेक को उद्बुद्ध न करती हो, जो मानव को मानव के साथ प्रेम पूर्वक रहना न सिखाती हो, जिसे अपने स्वयं का ज्ञान न हो, वह क्या शिक्षा है? इस शिक्षा से तो भिक्षा माँगना ही अच्छा है। कवि के ही शब्दों में देखिए—

सदुपयोग शिक्षा का करना, सौ शिक्षा की शिक्षा एक।
वह शिक्षा क्या शिक्षा है जो, सिखला पाती नहीं विवेक॥
पढ़कर भी इतिहास आप में, जगा आत्मविश्वास नहीं।
उस दीपक को दीप कहें क्या, जिसके पास प्रकाश नहीं॥

सरसता, रमणीयता, शब्द और अर्थ में गाम्भीर्य ये काव्य के प्रमुख गुण हैं। जो काव्य रसयुक्त हो और दोषमुक्त हो वही रमणीय है। काव्य में रमणीयता और सुन्दरता लाने हेतु अलंकारों का प्रयोग विशेष रूप से होता रहा है। प्रस्तुत काव्य में भी अनुप्रास, उपमा, रूपक, उदाहरण प्रभृति अलंकारों का प्रमुख रूप से प्रयोग हुआ है। जैसे देखिए—

सत्पुरुषों के स्पर्श से होती धरा पवित्र।
बनता वायु सुगंधमय पाकर उत्तम इत्र॥ (उपमा)

× × × ×

फूल सूंघने फल खाने को गाने को आकाश मिला ।
कौन पूछता पोस्ट कौन-सा और कौन-सा लिखे जिला ।।

(उदाहरण)

× × × ×

बोले बिना बिना डोले ही और बिना खोले ही आँख । (अनुप्रास)

× × × ×

जम्बू की गति में जब देखी अजब गजब वाली मस्ती ।
राजहस ऐरावत डरकर, छोड गए शहरी बस्ती ।। (रूपक)

इस प्रकार प्रस्तुत काव्य मे भाव पक्ष एव कला पक्ष दोनो अत्यन्त उज्ज्वल एव उदात्त हैं । कवि का सन्देश है विश्व प्रपच से विमुख होकर साधना के द्वारा मुक्ति को वरण् करना । वस्तुतः यह काव्य जहाँ ज्ञान-पिपासुओ के लिए उपादेय है वहाँ साहित्य मनीषियो के लिए भी ग्राह्य है । श्रद्धेय सद्गुरुवर्य ने दोनो ही वर्ग के व्यक्तियो के लिए यह अपूर्व देन दी है । प्रबुद्ध पाठको के लिए यह ग्रन्थ अपूर्व निधि के रूप मे है । आशा ही नही मुझे पूर्ण आत्मविश्वास है कि भारत भारती के अमूल्य कोश मे इससे भी अधिक मूल्यवान् साहित्य रूपी 'रत्न' गुरुदेव श्री समय-समय पर प्रदान कर उसकी अभिवृद्धि करते रहेगे ।

सिकन्दराबाद (आंध्र)
जैन स्थानक
१-८-७६

—देवेन्द्र मुनि शास्त्री

अनुक्रम



वैराग्यमूर्ति जम्बूकुमार : प्रथम स्तम्भ

मङ्गलाचरण

दोहे

जय जिन जय जिन-भावना, जय जय जिन-उपदेश ।
जय जिन-शासन-सम्पदा, शांतिप्रदा सुविशेष ।।
जय गुरु, जय गुरु-पद-कमल, जय गुरु जन आदेश ।
जय गुरु-शिष्य प्रशिष्य बल, उज्ज्वल संयम-वेष ।।
जय सम्यग्-दर्शन सुखद, जय जय सम्यग्-ज्ञान ।
जय संयम-आराधना, जय रत्नत्रय प्रान ।।
जय जय श्री आगमपुरुष, जय जय अग-उपांग ।
जय चारों अनुयोग की, विधि न एक विकलांग ।।
जय जय जिन जीवन सदा, अहित निवारक नित्य ।
हितकारक होता यथा, उदित नया आदित्य ।।
भावोदय साहस समय, जय हो जय विश्वास ।
लिखने को जम्बूचरित, करने लगा प्रयास ।।
लिखे गए जिस पर बहुत, उस पर लिखना ग्रंथ ।
चले बहुत जन हो नही, चालू रहता पंथ ।।
अपनी अपनी चाल से, चलता है ससार ।
नकल किसी की मारता, तस्कर का सरदार ।।
मति, रुचि अपनी लेखिनी, अपने ये कर पत्र ।
जन देखा करते यथा, अपने ग्रह नक्षत्र ।।
''पुष्कर'' ! दुष्कर सुकर कर, कर सुखकर अभ्यास ।
जिससे जीवन को मिले, कोई नया प्रकाश ।।

चरित-महिमा :—

जम्बूस्वामी का चरित, देता है वैराग्य ।
सुनते पढते जो इसे, उनका ऊंचा भाग्य ।।
सोहम गणधर के सुखद, पटधर शिष्य प्रधान ।
जम्बू अतिम केवली, भाग्यवान गुणवान ।।
परम प्रभावक प्रभव के, परम पूज्य गुरु आप ।
जम्बूजी की जीवनी, पूर्णतया निष्पाप ।।
महापुरुष महिमा निलय, स्वयं हो गये सिद्ध ।
जिन-शासन मे अत्यधिक, जम्बू नाम प्रसिद्ध ।।
शील ग्रहणकर कर ग्रहण, किया जगत का त्याग ।
सतावीस युत पचशत, व्यक्ति उठे है जाग ।।
ऐसी घटना फिर कहीं, घटी नही अन्यत्र ।
इसीलिए यह एक ही, अति विश्रुत सर्वत्र ।।
जन जन को है बहुत-प्रिय, श्री जम्बू व्याख्यान ।
नूतन रचनाएँ सभी, इसका सबल प्रमाण ।।
धन्य धन्य जो त्याग का, पथ करते स्वीकार ।
अनुमोदन का है हमे, पूर्णतया अधिकार ।।

धन्य है वे

धन्य लेखिनी क्यो न वह, जो लिखती सद्ग्रन्थ ।
ग्रन्थ खोलते ग्रन्थियाँ, ग्रन्थ दिखाते पथ ।।
श्रवण, पठन, वितरण तथा, मुद्रण में सहयोग ।
जो भी देते धन्य वे, सम्यग्-दर्शी लोग ।
सत्पुरुषो के स्पर्श से, होती धरा पवित्र ।।
बनता वायु सुगधमय, पाकर उत्तम इत्र ।।

लिखते अपने ढंग से, लेखक सभी स्वतन्त्र ।
लिखते विविध प्रकार से, क्या न पनरिया यन्त्र ॥
जो कहना था कह दिया, करूं कथा प्रारम्भ ।
प्राप्त करेगा पूज्यता, पुष्कर पहला स्तम्भ ॥

मगध की महिमा

राग—राधेश्याम

महिमाशाली मगधदेश की, कीर्त्ति अन्य देशों में व्याप्त ।
उत्तमता के बिना किसी को, उत्तम स्थान न होता प्राप्त ॥
जन जीवन के योग्य वस्तुएँ, जो कर सकता है उत्पन्न ।
क्या वह देश कभी बाहर से, मँगवाया करता है अन्न ॥
उत्पादन की वृद्धि हमेशा, प्रोत्साहित करता निर्यात ।
देशनिवासी नही जानते, सुनते नही कमी की बात ॥
कहते देश दूसरे ऐसे, हम इससे व्यापार करे ।
पारस्परिक सभी समझौते, हर्ष-सहित स्वीकार करे ॥
दबता नही स्वय औरो से, औरो को न दबाता आप ।
देश-द्रोहियों को न कभी जो, करता सपने में भी माफ ॥

मगध की राजधानी

देशरत्न पुर राजगृह की, कीर्त्ति अमर-पुर तक फैली ।
मानो कभी विधाता ने हां, रखी एक धन की थैली ॥
पुर के चारो दरवाजो पर, रहते पहरेदार खड़े ।
द्वार बन्द हो जाने पर जन, निशिभर रहते बहिर पड़े ॥
चलने पाता बल न शत्रु का, पुर गोपुर दुर्जेय अदम्य ।
पुर जितना अन्दर से सुन्दर, उतना बाहर से भी रम्य ॥
सभी राजमार्गो पर सुन्दर, आवासों की पंक्ति भली ।
आती नही देखने में भी, गदी अधी एक गली ॥

आवासों की उज्ज्वलता से, उज्ज्वल सारे ग्रह-नक्षत्र ।
आदर्शों की अत्युज्ज्वलता, प्रतिबिंबित होती अत्यत्र ॥

आवासो की ऊँचाई से, कुछ नीचा लगता आकाश ।
इनने उसको, उसने इनको, कभी बुलाया होगा पास ॥

राजभवन की ईर्ष्या करके— जन-जन-भवन उठे ऊँचे ।
ईर्ष्या करने वाले गिरते, पढ़ उन्होने कब ढूचे ॥

राजगृही के उपवन

पुर के बाहर रम्य रम्यतम, उपवन चारो ओर भले ।
जिन्हे निरखकर नन्दनवन भी, मन ही मन क्यों नही जले ? ।

भाति भांति के विटपो वाली, खडी पक्तियाँ जहा अनेक ।
जाति अलग कुल अलग हमारे, कौन हमे बतलाता एक ॥

हम सबका अस्तित्व अलग है, जाति एक होने से क्या ।
एक पक्ति मे एक समय मे, उपवन में बोने से क्या ॥

फलते अलग फूलते साथ न जैसे जीवात्मा सारे ।
जैनधर्म के हम अनुयायी, दृष्टि पसारे भ्रम टारे ॥

वल्लरियां भी अपनी गति से, बढती साथ न सकुचाती ।
पुरुषो के सम स्त्रिया क्यो नही, सकल कर्मक्षय कर पाती ॥

विटपो की टहनी टहनी पर, विहग बोलते मीठे स्वर ।
कहते लिए हमारे हित ये, बने मनोहर घर ही घर ॥

फूल सूघने फल खाने को, गाने को आकाश मिला ।
कौन पूछता पोस्ट कौन सा, और कौन सा लिखे जिला ॥

जीते हम सुखपूर्वक अपने, उपवन को गूजा देते ।
देते सुख आनन्द सभो को, जीवन के अनुभव लेते ॥

कल की क्या चिन्ता न आज की, पल की भी न हमे परवाह ।
स्पर्श मात्र सम्यग्दर्शन का, ज्यो देता आनन्द अथाह ॥

विहगकुलों से शिक्षा लेते, गुणग्राही-जन मन-ही-मन ।
इसीलिए पुर बाहिर सुन्दर-सुन्दर होते है उपवन ॥

नगर के जलाशय

सदियों से जो नदियाँ बहती बदियाँ करती कभी नही ।
इन्हें देख बहती वनिताएँ, दुख से डरती कभी नही ॥

मधुर मनोहारी जल देकर, पावन करती जन-जीवन ।
जीवन का आधार प्रमुखतम, माना जाता है जीवन ॥

तालाबों के हर घाटो पर, पीने का जल होता प्राप्त ।
लिए सभी के खुले रातदिन, जब तक होता जल न समाप्त ॥

शीतल छाया से सर-पाली, शीतल बनी हुई रहती ।
शीतलतावाली वनिता क्या, कटुकवचन मुख से कहती ॥

विविध जाति के विहग वहां पर, जलक्रीडा करते सुन्दर ।
अवलोकन कर वर आनन्दित, होते अमर तथा किन्नर ॥

दुरुपयोग जल का न कहीं हो, इस पर देते ध्यान सकल ।
ध्यान-शून्यता से रह जाते खुले आज कल बहुधा नल ॥

जल जीवो की हिसा से ही, बचनेवाले विज्ञ विशेष ।
श्रावक क्या न चितारा करते, चौदह नियम हमेश-हमेश ॥

लिए स्नान के लिए पान के, जल की मर्यादा करते ।
किसी लिए भी जल भरते तब, छान छान-करके भरते ॥

जल का कष्ट न किसी स्थान पर, प्रकृति की थी पूर्ण महर ।
जल के बिना उजड़ जाता है, हो कितना ही बडा शहर ॥

राजगृही के नागरिक

जागरूक नागरिक नगर के, नियम पालते तन मन से ।
कोई नही देखने कहने, आता देखो जन जन से ॥

ओक सदृश निज वीथि वीथिसम चोक, चोकसम पुर-बाजार ।
बाजारो सम सारे पुर-पर देते ध्यान स्वयं नर-नार ।।
पुर की सुन्दरता को अपनी, सुन्दरता माना जाता ।
जननी जन्मभूमि का नाता, किसकी तुलना में आता ।।
भद्रप्रकृति वाले हृदयो ने, नही क्षुद्रता को जाना ।
पर-धन धूल, परस्त्री मा सम, पर को आतमा सम माना ।।
अपने-अपने कर्त्तव्यों का, रखते सारे सज्जन ध्यान ।
सेवा, श्रम, सहयोग प्राप्त कर, देकर अनुभवते सन्मान ।।
सभी जाति के सगठनो मे, मेल-मिलाप बडा भारी ।
ओरो की उन्नति में अपनी, उन्नति लगती अति प्यारी ।।
किसी अन्य को हीन बनाकर, बड़े नही बनना भाई ।
किसी अन्य को उन्नत करके, उन्नत बनना सुखदाई ।।
अपने-अपने धर्म कर्म पर, चलने का सबको अधिकार ।
परपरागत गत जन्मागत, संगागत होते सस्कार ।।
छीटाकसी किसी पर करना, धार्मिकता को नही कबूल ।
कितना ही वह बडा क्यो न हो, कल्पविटपि बनता न बबूल ।।
कहते सभी सभी सुनते सुख, दु.ख आपस में लेते बाट ।
प्रेमभाव से सुलझा लेते, पडी पुरानी कोई गांठ ।।
हम सब है इन्सान हमे क्यो, करना जी अभिमान कहो ।
बडे बड़े धनवान भले हो, पर सारे इन्सान रहो ।।
हो सकते भगवान नही हम, हो सकते शैतान नही ।
सहा नही जायेगा हम से, जो कहदे इन्सान नही ।।
इसी बात पर चिन्तन करनेवाले थे वे पुर-वासी ।
ऐसे धार्मिक लोगो को क्या, जाना होता है काशी ।।

राजगृही की जागरूकता

सरस्वती का लक्ष्मी का ही, रूप स्त्रियां माना जाती ।
कोई नही घूरता उन पर, कहीं अगर जातीं आतीं ।।
पुष्प फलो से लदी हुई ज्यों, वल्लरियां होती प्यारी ।
प्रेम शील सतान शांतिप्रद, स्त्रियाँ सुशोभित सुखकारी ।।
सतानो में सस्कारो के, भरने का उत्तर-दायित्व ।
माताएँ सप्रेम निभाती, रखने को संस्कृति स्थायित्व ।।
स्त्री न समर्पित हो पति के प्रति, पातिव्रत्य फिर उठ जाये ।
हृदयेश्वरी बनानेवाला, बेचारा जन लुट जाये ।।
जो न पिता पाले पुत्रो को, कैसे वंश फले फूले ।
वत्सलता वाले अणु-अणु, फिर हो जाये लगडे लूले ।।
भाई भाई को न प्यार दे, विघटित हो जाये परिवार ।
नरकागार समान लगे यह, जो लगता सुंदर संसार ।।
कल के लिए नही रखना जब, कुल के लिए रखेगा कौन ।
लिए आज के यह अपना कल, क्यो न बना बैठेगा मौन ।।
स्वार्थी नही बहुत परमार्थी, मानव प्रतिभाशाली हो ।
जिसने मानव संस्कृति वाली, गहरी नीवे डाली हो ।।
है परिवार इकाई जग की, इसमें तो दो राय नही ।
घर परिवार बिना स्त्री के, क्या, बन जाता असहाय नही ।।
स्त्री के बिना नही घर होता, घर के बिना नही परिवार ।
एक बिना दो तीन चार तक, गिनने का क्या हो आधार ।।
राजगृही के परिवारो मे, स्त्री का था ऊँचा सम्मान ।
नारी नरक समान मानकर, नही दिखाते निज अज्ञान ।।

राजगृही का राजा

देशवासियो के वैभव की, रक्षा का जो जिम्मेवार ।
उसी नृपति को माना जाता, परमात्मा का ही अवतार ।।

दिन का राजा सूर्य रात का, राजा माना रजनीनाथ ।
दोनो का जो राजा होता, वह होता है पृथ्वीनाथ ॥
वन का और शहर गांवो का, राजा होता है राजा ।
राजा की पुण्याई का, कुछ लगा न सकते अन्दाजा ॥
पूर्व जन्म की उग्र तपस्या– का फल होता तेज-प्रताप ।
जिसके अंगस्फुरण से अरिगण, घर बैठे ही उठते कांप ॥
सातो अग राज्य के पाकर, राजा कीर्त्ति कमा लेता ।
उजड़े हुए राज्य को फिर से, स्थिरता सहित जमा देता ॥
पूर्ण योग्यता परख पिता ने, जिसे बनाया था नरनाथ ।
मगधदेश के मालिक का था, श्रेणिक नाम शुभकर गात ॥
नन्दा राणी का शुभ आत्मज, अभयकुमार प्रमुख मंत्री ।
सभी प्रमुख बाते ज्योतिष की, रखती अपने में जंत्री ॥
कूणिक माता सती चेलणा, पटरानी से रति हारी ।
चेटक नृप की सुता सातवी, सहोदराओ की प्यारी ॥
रूप-शील सौभाग्य शांति सुख, जो अपने सह ले आती ।
वह नारी भारी सुख पाती, क्यो न किसी के घर जाती ॥
प्रबल युक्ति से आत्म शक्ति से, पति को बना लिया धर्मिष्ठ ।
चेष्टाओ से क्लिष्ट कार्य भी, कर देते अक्लिष्ट वरिष्ठ ॥

राजगृही के व्यापारी

बैठ दुकानो पर व्यापारी, उचित लाभ लेते सुखकर ।
अनुचित लाभ उठाना ही तो, लिए देश के अति दुखकर ॥
जैसा कहते वैसा करते, जो दिखलाते वह देते ।
जो भी भाव मांगते वो ही, सभी ग्राहको से लेते ॥
इससे कुछ ले उससे कुछ ले, इस उसको देने में भेद ।
ऐसे व्यापारी-लोगो पर, प्रगट किया जाता है खेद ॥

स्वास्थ्य विरोधी द्रव्य मिलाकर, द्रव्य कमानेवाले जन ।
धन का सपना नहीं देखते, केवल खुश कर लेते मन ।।
प्रतिस्पर्धा कर हानि उठाने-वाले हीन-वृत्ति के लोग ।
बनकर दुखी बताते मुखसे, कैसा अशुभ ग्रहो का योग ।।
ग्राहक-भाव-माल-किस्मत पर, जिनको पूर्ण भरोसा है ।
किसी पडौसी व्यापारी को, उनने कभी न कोसा है ।।
व्यापारी व्यापारी मे कुछ, झोड अगर पड़ भी जाता ।
व्यापारी व्यापारी मिलकर, फिर खुलवा देते खाता ।।
लेते देते सभी परस्पर, योग्य माल धन शक्त्यनुसार ।
किसी अकेले व्यापारी का, कभी नही चलता व्यापार ।।
आवश्यकता किसे न होती, चाहे हो वह क्यों न कुबेर ।
सह लेते है व्यापारी जन, अगर कभी हो जाती देर ।।
समय-समय पर मिलते सारे, नये नियम भी घड लेते ।
कठोरता से नियम पालते, नियमो के हित लड लेते ।।
छोटे बड़े सभी व्यापारी, नही बडों को कोई छूट ।
छूट एक को देने से ही, स्वतः सगठन जाते टूट ।।
शक्ति संगठन मे होती है, इसीलिए सब रहते एक ।
सभी एक हो सभी नेक हो, इसमें ही है सिद्धि अनेक ।।
इसने कैसे कमालिया धन, जलन नही उठने देते ।
कोई किसे लूटता हो तो, उसे नही लुटने देते ।।
शोभा साख सभी की रखते, इसीलिए बढ़ता व्यापार ।
राजगृही के बहुत बड़े थे, एक नही सारे बाजार ।।

राजगृही का जैनधर्म

श्रमण श्रमणियो की सेवा में, तत्परता दिखलाते लोग ।
भारतीय सस्कृति ने अब तक, गिना त्याग से बडा न भोग ।।

महामत्र नवकार पदों की, माला गिनते तन-मन शुद्ध ।
स्थान ध्यान उच्चारण कारण, नही चाहिए एक अशुद्ध ।।
त्रसहिसा का त्याग निभाते, स्थावर पर करते कारुण्य ।
जीवदया व्रत से मिलता है, जैन जगत को अतितारुण्य ।।
सत्यव्रती नर किया न करते, इधर उधर की बाते व्यर्थ ।
व्यर्थ बोलने वालो द्वारा, होते कितने बड़े अनर्थ ।।
नही चुराते द्रव्य किसी का, माल न रखते चोरी का ।
बहुत घृणित व्यवसाय बताते, अधिक मुनाफाखोरी का ।।
यौवन वय मे पदन्यास कर, रखते निजदारा सतोष ।
असतोष से उपजा करता, परदारा-सेवन का दोष ।।
अधिक परिग्रह रखने वाला, अधिक उठाया करता कष्ट ।
उत्पादन सरक्षण व्यय में, कष्ट कष्ट ही होते स्पष्ट ।।
दिग्परिमाण व्रताराधक नर, अधिक न करते योतायात ।
दौड-धूप करने वाले जन, नही बैठते सुख के साथ ।।
आवश्यकता नही बढाते, परिमित रखते द्रव्य सभी ।
ओरो के हित वस्तु न कोई, देखी गई अलभ्य कभी ।।
अस्त्र शस्त्र लेने देने मे, सावधानता रखते नित्य ।
पता नही किसके हाथो से, हो जाए कोई अकृत्य ।।
सामायिक व्रत समता युत ले, समता का करते अभ्यास ।
श्रमणोपासक का होता है, साम्यभाव पर दृढ़ विश्वास ।।
पौषधशालाओ में करते, पौषध षट् प्रतिमास भले ।
परभव जाते समय साथ में, सिवा धर्म के कुछ न चले ।।
गोयरियाए जब मुनि आते, दोष-विवर्जित देते दान ।
बारहवां व्रत निपजाने का, श्रमणोपासक रखते ध्यान ।।
साधारण नियमोपनियम से, नियमित रखते जीवन-काल ।
जिससे सुख से सो पाये नर, क्यो आये खोटे जजाल ।।

तत्त्वज्ञान की चर्चाओं में, लेते भाग सहर्ष सभी ।
नही वितडावादो द्वारा, निकला है निष्कर्ष कभी ।।
अन्यधर्म की विशिष्टताए, अपनाने में दोष नही ।
अन्यधर्म के वेप क्रिया पर, किसी तरह का रोष नही ।।
कर्मो के क्षय उपशम से ही, आत्मा पाता सम्यक् धर्म ।
जैन धर्म के अनुयार्या से, छिपा न होता है यह मर्म ।।
सभी भव्य क्या मुक्त बनेंगे, होगे भव्य अभव्य नही ।
एक राशि रह जाने का भय, प्रश्न आज का नव्य नही ।।
जिसे जरूरत होगी वह नर, मोलायेगा माल न क्या ? ।
धर्म प्राप्ति मे वाधक बनता, कर्मोदय सह काल न क्या ? ।।
दे उपदेश सतजन सबको–सुनने का अधिकार सदा ।
जिसकी शक्ति और अभिरुचि हो, वह करता स्वीकार सदा ।।
करे नही स्वीकार मानने–से भी जो इन्कार करे ।
तिरस्कार उसका न करे हम, मृदुल मृदुल व्यवहार करे ।।
धर्म-प्रचार करे सुखपूर्वक, नहीं किसी पर भार धरे ।
अपने योग्य भूमिका अपनी, हम पहले तैयार करे ।।
ऐसा चिन्तन करने वाले, जैन राजगृह में रहते ।
पुष्कर मुनि अपने लोगों से, ऐसा होने को कहते ।।

राजगृही के अन्य धर्म

बौद्धधर्म के भक्तजनो का, अधिक प्रचार वहां पर था ।
बौद्धधर्म का दृढ़ अनुयायी, पहले मगधाधीश्वर था ।।
बौद्ध साधु भारी संख्या में, रहते थे आते जाते ।
मध्यममार्ग सरलता पूर्वक, जन साधारण अपनाते ।।
गोशालक द्वारा संस्थापित, आजीवक मत वही पला ।
महावीर के सिवा दूसरे पाच, जिनों का नाम चला ।।

अन्य प्रमुख धर्मो का गढ भी, रहा राजगृह पुर सुखकार ।
मठो मंदिरो में रहती थी, प्रातः सायं भीड अपार ॥
आरति गाते तिलक लगाते, दीप जलाते करते धूप ।
अपने इष्टजनों की स्मृति में, बढिया बना डालते स्तूप ॥
कभी त्रिदंडी वल्कलचीरी, कभी दिशा-प्रोक्षक आते ।
नंगे बाबे बडी जमाते, लाते भय भी दिखलाते ॥
कभी चीमटे वाले आते, आते लंगोटी वाले ।
सीगी वाले टोपी वाले, आजाते सोटी वाले ॥
एक समय कोई रहते तो, उसी समय कोई जाते ।
महादेव के भक्त विष्णु के—भक्त स्वय को बतलाते ॥
कोई अन्न-वस्त्र ले लेते, ले लेते कोई पैसा ।
दे देते वरदान ज्ञान से, फलता वैसा का वैसा ॥
मत्र यत्र तत्रो वाले भी, आते बहुत करामाती ।
दुनिया की छाती ने देखी, बहुत बहुत ठंडी ताती ॥
जैनधर्म का मार्ग कठिनतम, त्याग तपस्या से भरपूर ।
अल्प सत्त्व वाले सज्जन जन, रहते बहुधा इससे दूर ॥

राजगृही के आस-पास

राजगृही के आस-पास मे, अधिक न हिसा अधिक न झूठ ।
अधिक न चोरी अधिक न जारी, अधिक नही निंदा पर-पूठ ॥
सप्त व्यसन का अधिक न दर्शन, नही अधिक रोगो की मार ।
अधिक न कलह क्लेश आपस में, अधिक नही प्राणान्तक खार ॥
ईर्ष्या चुगली अधिक नही पर-छिद्रान्वेषण अधिक नही ।
विकथा बाते अधिक नही, धर स्मृति-संप्रेषण अधिक नही ॥
क्रोध अहंकृति अधिक नही है, अधिक नही है छल माया ।
महालोभ की छाया नीचे, कार्श्य नही पाती काया ॥

अधिक न काम नाम की इच्छा, अधिक न मोह किसी नर-पर ।
अधिक नही रहते नर घर पर, अधिक नहीं रहते बाहर ॥
अधिक न निद्रा अधिक न आलस, अधिक नही आराम कही ।
अधिक न ऐसी संख्या जिनके, पास स्वय का काम नही ॥
अधिक अशिक्षित नही पराश्रित, अधिक अनिश्चित ध्येय नही ।
अधिक न मांसाहार-सीन्धु[1] को, अश्रेयस्कर पेय नही ॥
अधिक न वर्षा अधिक न गर्मी, अधिक नही सरदी पडती ।
प्रजाजनों की प्रकृति के सह, प्रकृति कभी नही लडती ॥
दोष अधिकता बतला देती, अब कलियुग आनेवाला ।
प्रलंयकार मचाने वाला, कर को कर खाने वाला ॥

राजगृही में मात्र

कालसौकरिक जैसा कोई, नही दूसरा वधिक कही ।
महिष पंचशत प्रतिदिन हनता, इससे कमती अधिक नही ॥
रत्नो के बैलो की जोडी, पूरन करने वाला सेठ ।
लोभी मम्मण भर पाया क्या, कभी शांति से अपना पेट ॥
दृढप्रहारी रोहिणेय सम, इस पुर के नामी तस्कर ।
पकड़े गये कभी किससे क्या, हार चुका था मंत्रीश्वर ॥
कोणिक जैसे पितृ-शत्रु-सुत, और कही क्यो जनमे अन्य ।
चक्रवर्ति बनने का सपना, कर न सका सपूर्ण अधन्य ॥
धन्ना शालिभद्र से भोगी-त्यागी यही हुए उत्पन्न ।
जिनकी महिमा जैन जगत से, कैसे रह सकती प्रच्छन्न ॥
भद्रा जैसी सेठानी ही, रत्नकबले ले पायी ।
सवालाख सोनैये कीमत, एक एक की दे पायी ॥

---

१ मद्य

श्रेणिक को घर बुलवाने का, साहस था सेठानी का ।
सेठानी का क्या गुन गाएँ, गुन गाएँ उस पानी का ।।

महावीरस्वामी ने अपने, चौदह वर्षावास किये ।
राजगृही के चारो पर्वत, खड़े नया इतिहास लिये ।।

अभयकुमार सचिव की मति से, जला न नृप का अन्त:पुर ।
जिनशासन की सेवा मे था, राजगृही का योग प्रचुर ।।

"जा रे जा" सुन पितृवचन, मन महावीर की ओर मुडा ।
कितनी तेज सुगन्ध दे रहा, अभय-त्याग का धूप-पुड़ा ।।

जम्बूस्वामी जैसे त्यागी, राजगृही के रत्न महान ।
कुल का आत्मा का चोरो का, अपने साथ किया कल्यान ।।

विशेषताओ पर केन्द्रित कर, ध्यान स्वयं बढते जाना ।
'पुष्कर' परिहर दोष निकर, घर अजर अमरता का पाना ।।

राजगृही में न्याय

राजा प्रजा सुखी थे सारे, मिलता सबको सुख से न्याय ।
शीघ्र न्याय मिल जाने के हित, किए गए थे बहुत उपाय ।।

न्यायी सुखी दुखी अन्यायी, रीति यही चलती आई ।
न्याय न्याय है नृप के सम्मुख, चाहे हो अपना भाई ।।

प्रतिदिन राजसभा मे आना, सुनना सुख-दुख सारो का ।
करना आदर न्याय-नीति से, आये हुए विचारो का ।।

अलिखित लिखित कथित अकथित पर, श्रुत अश्रुत पर देकर ध्यान ।
व्यथित चित्त को शांत बनानेवाला शासन न्याय प्रधान ।।

रोते न्यायी, अन्यायी जन हँसते हो वह न्याय नही ।
सिवा रुदन के सिवा सहन के चलता वहां उपाय नही ।।

राजा करो करो फिर मंत्री, प्रजाजनो से करवाओ ।
किसी तरह से भरवाओ पर, घाव हृदय के भरवाओ ।।

श्रेणिक के सुन्दर न्यायों का, श्रेय अभय को था सारा ।
बुद्धि निधान प्रधान महिप को, मिलते किस्मत के द्वारा ॥

हर्षवर्द्धक समाचार

श्रेणिक आये राजसभा में, इतने में आया वनपाल ।
अभिवादन कर हर्ष विनय भर, उच्च स्वर बोला तत्काल ॥
"महावीर भगवान पधारे" देव दुन्दु भी बजती है ।
ध्वजा पांच सौ के परिकर से, इन्द्र ध्वजा भी सजती है ॥
नया वसत आ गया ऐसा, वन के द्वारा हुआ प्रतीत ।
पवन सुगंधित हो जाने की, मलयाचल से मिलती रीत ॥
वर्षा ऋतु के विना सरस्थित, सलिल बढ़ा है अपने आप ।
बिना दुहे ही गौएँ स्तन से, दुग्ध क्षरण दिखलाती साफ ॥
सुरपथ से सुर किन्नर आते, गाते और नाचते साथ ।
मन आश्चर्यान्वित हो जाता, देख अलौकिक ऐसी बात ॥
देव ! बधाई आप मानिए, आये वर्द्धमान भगवान ।
श्रमणसंघ का रग निराला, पावन आज बना उद्यान ॥

देव-वन्दना

सुनकर समाचार सुखवर्द्धक, उतरा नृप सिंहासन से ।
अपना जीवन धन्य बनाया, जिन-स्तुति से जिन-वंदन से ॥

बधाई में

राज्य चिन्ह के सिवा दिए है नरपति ने अपने गहने ।
राजसभा के समय देह पर, जिस दिन जो होते पहने ॥
प्रसन्नता का पार नही मन, उछल रहा दर्शन पाने ।
मन के भाव स्वयं पहचाने, या केवलज्ञानी जाने ॥

दर्शनों की तैयारी

प्रभु-दर्शन करने जाने की, होती है अब तैयारी ।
समय-समय पर सज्जित होती, राजाओ की असवारी ।।

जलद घटा सी छटा दिखाते, मदमाते गजराज सजे ।
अभी कही ये बरस पड़ेगे, कोरे बादल निरख लजे ।।

मानो उडते हुए विहगम, चपल तुरगम सज आये ।
रत्नजटित स्वर्णाभूषण सब, अश्वो को थे पहनाये ।।

रथ सजने से सजा राजपथ, जुते वृपभ शोभा पाते ।
पाते पता सदन स्थित जन मन, जिस पथ से जब रथ जाते ।।

पैदल दलबल विमल पटाकित, पक्ति बनाकर हुआ खड़ा ;
सेवा अभय और अनुशासन इसमे होता बडा कड़ा ।।

इनके चीफ कमांडर इनको, जो देते इंगित आकार ।
तदनुसार चारो सेनाऐ, करती है अपना व्यवहार ।।

पट्ट हस्तिनी हुई सुशोभित पाकर नृपका सिहासन ।
यह भी श्री जिन-दर्शन पाकर, कर लेगी जीवन पावन ।।

सती चेलणा के चढने से बना सुशोभित श्री सुखपाल ।
उसे रोकता कोई कैसे क्यो देखा जो मु ह निकाल ।।

जिनकी इच्छा थी वे सारी आई है असवारी मे ।
सजकर जाने की आकाक्षा पाई जाती नारी मे ।।

भांति-भांति के वाद्यो की ध्वनि कर्ण कुहर भरने उठती ।
मानो शिष्या वंदन करके, फिर वंदन करने उठती ।।

सजा राजपथ अथ से इति तक, कही नही उड़पाती धूल ।
शात और शीतल रहने का, किया असूल कबूल अमूल ।।

अधिक स्वच्छ कर दिए गए है, आज सभी ही स्थानो को ।
मानो सदा स्वच्छ रखने का, कहते वे इन्सानो को ।।

नृप सम्मानित सेठ सजे है, अन्य नागरिक साथ सजे ।
जिस ग्रहसे वासर सजता है, क्यों न उसी से रात सजे ।।

श्रावक गण धर्मोपकरण ले, तत्क्षण करते चरणन्यास ।
त्रिकरण से प्रस्फुरित हो रहा, वर्ण अगोचर हृदयोल्लास ।।

धर्म क्रियाऐ करने वाली, सजी श्राविकाऐ सारी ।
जिनकी धर्म स्थिति के सम्मुख, कर्म-स्थितियाँ भी हारी ।।

नन्हे मुन्ने सजे साथ में, लिए हाथ में ध्वज जाते ।
मगल गाते जय बोलाते, धरणी-अम्बर गुजाते ।।

जिज्ञासा और जागरण

जिनदर्शन को जाने वाले, चिन्ता क्यों करते घर की ।
आज सुनेगे धर्म देशना, जीभर के श्री जिनवर की ।।

कोई कहता कभी आज से, पहले दर्शन किए नही ।
कोई कहता मैने कोई, पच्चखाण व्रत लिए नही ।।

कोई कहता मै न जानता, क्या होती है धर्म-कथा ।
कोई कहता वंदन की विधि, पहले ही दे मुझे बता ।।

कोई कहता मुझे वंदना, करते आती लाज भला ।
बुरा भला तो नही कहेगे, तेरे वे जिनराज भला ।।

हम तो जैन नही है भाई, तेरे साथ चले आये ।
रोक नही दे हमको कोई, कष्ट न कोई पहुँचाये ।।

कैसे होगे वीर - जिनेश्वर, कैसे होगे श्री गौतम ।
क्या उनसे कुछ प्रश्न धर्म के, प्यारे पूछ सकेगे हम ।।

क्या वे समाधान कर देगे, दिखलाएँगे रोष नही ।
क्या वे अन्य संप्रदायो के, दिखलाएँगे दोष नही ।।

भूत भविष्य हमारा हमको, बतलादेगे क्या सारा ।
दु:ख मिटा देगे क्या यत्रो, मंत्रो तंत्रो के द्वारा ।।

क्या वे सच्चे समताधारी, शान्तिविहारी है निर्ग्रन्थ।
क्या वे स्वीकृति दे देंगे हम, जो स्वीकार करे जिनपंथ॥
क्या वे सीधी - सादी भाषा, लिए हमारे बोलेंगे।
या वे अपनी विद्वत्ता का, नया खजाना खोलेंगे॥
इन्द्र पूज्य होने से क्या वे, जरा नही करते अभिमान।
क्या वे वास्तव में रखते है, बुद्ध तुल्य त्रैकालिक ज्ञान॥
अगर निमंत्रण दे हम तो क्या, प्रेम सहित स्वीकारेंगे।
अथवा भिक्षा लेने को वे, अपने आप पधारेंगे॥
क्या हम देना चाहे तो वे, वस्त्र-दान भी ले लेंगे।
हम उनसे कुछ मांगे तो क्या, हमें प्रसाद बचा देंगे॥

विरोधी मानस

जिनाचार से पूर्ण अपरिचित, परिचित होने को आये।
अपने साथी युवको से ही, प्रश्न उठाये मन भाये॥
कुतूहली नर इधर-उधर की, बाते लेने को आये॥
चलो हाथ कुछ नही लगा तो, समझेंगे धक्के खाये॥
देखे अपने धर्म-पंथ का, खुला विरोध करेंगे क्या।
वही जवाब लिया जायेगा, हम से वे न डरेंगे क्या॥
है वे कितने, है हम कितने, अल्पसख्यको का क्या स्थान।
क्या है अपने भक्तो में ही, कहलाते वे श्री भगवान॥
होता है प्रत्येक क्षेत्र में, सत्य वस्तु के प्रति अज्ञान।
सत्य सामने कब आता है, कहते हैं ऐसे विद्वान॥
"निहित सत्य सदा गुहायां" ऋषि-मुनि करते अविरल शोध।
एक जन्म ससिद्धि: है क्या, एक जन्मगत है क्या बोध॥
साधारण जन भ्राति निवारण, कारण करते ऊहापोह।
जिज्ञासा के बिना बताओ, हुआ दूर किसका व्यामोह॥

जब तक निकट नही आते जन, तब तक प्रकट न होते भाव।
दूर-दूर रहने से बढ़ता, जाता मन का और दुराव॥
इसीलिए आने जाने का, क्रम रखना है अत्युत्तम।
अपना चिन्तन प्रस्तुत करने, के अधिकारी कविजन हम॥

गुणशैलक के निकट

पुर के प्रमुख पथों पर होती–हुई सवारी जाती है।
प्रभावना श्री जिनशासन की, प्रकट दृष्टि मे आती है॥
गुणशैलक उद्यान आ गया, फरक रही है ध्वजा महेन्द्र।
समवसरण स्थित नजर आ रहे, परिषदयुत श्री वीर जिनेन्द्र॥
नृप करिणी से नीचे उतरा, ग्रहण अचित्त वस्तु का कर।
वस्तु सचित्त अलग कर बढ़ने–लगा नियोजित निज युगकर॥
स्वर से जिन स्तुति, सिर से जिननति, गति मति से अचपल बनकर।
समवसरण में प्रभु के सम्मुख, हुआ उपस्थित तन मन स्थिर॥

देशना का प्ररूप्य

प्रभु ने देखा देव-देवियां, पुरुष स्त्रियाँ सब है आये।
साधु-साध्वियाँ आये आए-पशु पक्षी भी है आये॥
तीर्थंकर का प्रवचन सुनकर जन-मन होता है उद्बुध।
"खाली जाती नही देशना" उक्ति पुरानी बहुत प्रसिद्ध॥
प्रभु ने कहा तत्व है आत्मा, इसकी की जाये पहचान।
एक, पूर्ण, परिणामी, शाश्वत, लोक स्थित उपयोग-प्रदान॥
कर्म-मुक्त वह कर्म-युक्त यह, सिद्धात्मा फिर ससारी।
ससारी को करने की है, मोक्ष प्राप्ति की तैयारी॥
कर्म वर्गणा के द्वारा यह, बनी हुई है अति भारी॥
मिट्टी, के लेपो से दबकर, तुम्बी तरने से हारी॥
जीव अनादि, अनादि कर्म है, जीव कर्म सबध अनादि।
ज्ञान अनादि, अनादि जगत में, शब्द रूप रस गध अनादि॥

समयान्तर से स्थानान्तर से, भावान्तर से बाह्याकार ।
परिवर्त्तित होते रहने से, परिवर्त्तन पाता ससार ।।
उत्पादन व्यय ध्रौब्य पदत्रय, सारी ससृति का आधार ।
पदत्रयी के बिना न फलते, धर्म क्रिया आचार-विचार ।।
था, है, होगा जीव जीवका—नही अजीव बना बनता ।
यही इकाई दर्शन की है, इसे स्वत: समझे जनता ।।
जन्म नही है, मृत्यु नही है, जीवात्मा का निश्चय से ।
जन्म सही है मृत्यु सही है, योनि प्राप्त देहाश्रय से ।।
अभय पक्ष प्रत्यक्ष तत्त्व के, क्यो न रखे हम सदा समक्ष ।
देवयोनि से अलग नही है, यथा सुरासुर किन्नर यक्ष ।।

आचार : प्रथमोधर्म .

उज्ज्वल चिन्तन वाले नर का, होता है उज्ज्वल आचार ।
निश्चय नय जितना उपयोगी, उतना उपयोगी ब्यवहार ।।

दाहे

शुद्ध अगर ब्यवहार में, पूर्ण अशुद्धाहार ।
केवलज्ञानी भी स्वय, कर लेते स्वीकार ।।
अगर सरोवर का हुआ, जल सपूर्ण अचित्त ।
कभी न लेते केवली, रखने रीति पवित्र ।।
जो भी करते स्थापना, शिष्य सघ छद्मस्त ।
रहते उस पर केवली, पूर्णतया विश्वस्त ।।
मन किसने देखा कहो, देखा है व्यवहार ।
जो जग के व्यवहार का, एकमात्र आधार ।।
अत: आप अपना करो प्रथम शुद्ध व्यवहार ।
साधु-श्रावको के लिए, जो निश्चित आचार ।
पाच महाव्रत मेरु सम, पालन करते संत ।
समिति गुप्ति से शाति का, सुगम बनाते पथ ।।

बारह व्रत सम्यक्त्व युत, करण-योग-युत धार ।
करते श्रावक जन स्वयं, अपना बेडा पार ॥

सार्वभौम स्वरूप

मिथ्यात्वी अविरति अगर, पालन करते धर्म ।
होते उनके निर्जरित, प्राग्भव सचित कर्म ॥
सत्य बोलना पालना, शील और सतोष ।
लिए सभी के सम सदा कौन बताये दोष ॥
दगा नहीं देना कभी, देकर के विश्वास ।
लिए सभी के सम सदा, देता सूर्य प्रकाश ॥
दया दिखाना दीन पर, देना कर से दान ।
लिए सभी के सम सदा, पतन तथा उत्थान ॥
स्वास्थ्य-विवर्द्धक शांतिप्रद, सात्त्विक शाकाहार ।
लिए सभी के सम सदा, भूतल का आधार ॥
चलना नीचे देखकर, झुक-कर तज अभिमान ।
लिए सभी के सम सदा, स्वर व्यंजन का ज्ञान ॥
रखना समता शांति शुभ, करना कभी न क्रोध ।
लिए सभी के सम सदा, कृत्याकृत्य विबोध ॥
निश्छलता निरलोभता, सुखदायी सर्वत्र ।
अलग न आते एक के, लिए नये नक्षत्र ॥
धर्म एक सबके लिए, जो भी करता मान्य ।
लिए किसी के भी कभी, अलग न उगता धान्य ॥
जन्म-मरण जब एक है, मानवता भी एक ।
लिए सभी के सम सदा, है अविवेक विवेक ॥
दान-शील-तप-भावना, मोक्ष मार्ग है चार ।
लिए सभी के सम सदा, कौन करे इन्कार ॥

समवसरण सबके लिए, सुनें सभी उपदेश।
किसे न कोई रोकता, दिखा नया आदेश ॥
लिए सभी के ज्ञान का, खुला हुआ भडार।
अपनी प्रतिभा चाहिए, करे क्यो न स्वीकार ॥

धर्म की प्रेरणा

जीना है दिन चार का, आ जायेगा काल।
अय चेतन ! अब आपका, आपा तू संभाल ॥
धन आयेगा साथ क्या, जिसे रहा तू जोड़।
गये बाप-दादे सभी, इसे यही पर छोड ॥
कंचन काया एक दिन, बन जायेगी राख।
भले अभी इसको सदा, लाख जतन कर राख ॥
स्वजन सभी प्यारे अभी, कभी न देगे साथ।
धन खोने पर एक भी, नही करेगे बात ॥
प्राण प्रिया के प्रेम पर, लुटा रहा तू प्राण।
प्राण हटे हो जायगा, शिरस्त्राण पदत्राण ॥
वृद्धावस्था में नही, कर पायेगा धर्म।
करो जवानी में नही, कोई कुत्सित कर्म ॥
जब आती है वेदना, रोता मन दिन रात।
किसी दुखी की क्यो कहो, सुनी न जाये बात ॥
काम-भोग ससार के, मीठे विष सम जान।
परिणति पश्चात्ताप की, तू मत बन अनजान ॥
जाग अभी सो मत कभी, सभी सुनाते सत्य।
रोगी रख पाता नही, औषधि ऊपर पथ्य ॥
आज नही कल ही सही, करना होगा धर्म।
मन हट जाता एक दिन, कर-कर कुत्सित कर्म ॥

पाप क्रियाओ का न क्या, आता देखो अंत।
क्या न घुणाक्षर न्याय से, मिल जाता सत्पंथ ॥
लेने देने की नही, धर्म क्रयाणक वस्तु।
बात समझने की बडी, समझो मन से अस्तु ॥
लिए किसी के क्या कभी, करता कोई धर्म।
करते सब अपने लिए, समझो अंतर मर्म ॥
किए किसी के कर्म का, फल न भोगता अन्य।
कर्मजन्य फल से स्वयं, कर्त्ता बनता धन्य ॥

कथा में एक विक्षेप

इतने ही में तेज पुज इक आता सबको दीख रहा।
कहने लगे हमारा आना, आज बहुत ही ठीक रहा ॥
सभी दिशाएँ विदिशाएँ मिल नया प्रकाश दिखाती है।
कहती है क्या सिर्फ पूर्व ही, लाली लेकर आती है ॥
दक्षिण, उत्तर, पश्चिम कोई, नहीं आज सब पूर्व बनी।
एक अमर कीज्योति प्राप्त कर, जो थी पूर्व अपूर्व बनी ॥
अशरण शरण,तरण-तारण जिन-चरण वदना कर निर्जर।
निर्जर-परिषद में जा बैठा, सबका ध्यान गया उस पर ॥

श्रेणिक का प्रश्न

लगा पूछने भभसार नृप, अभी-अभी जो आया देव।
होते हुए देव के भी यह, दिखता ज्यों सुरपति स्वयमेव ॥
इसकी तन छवि के सम्मुख है, सहस्रांशु की छवि भी हीन।
पूर्वजन्म का उग्र तपस्वी, होगा कोई जीव प्रवीन ॥

देव का भविष्य

चरम केवली जंबूस्वामी यही जीव कहलायेगा।
सात दिवस में आयु शेष कर, उत्तम नरभव पायेगा ॥

ऋषभदत्त श्रेष्ठी के घर पर, इसा नगर मे आयेगा ।
त्यागी वैरागी बडभागी, सयम पथ अपनायेगा ॥
पट्ट सुधर्मा का पायेगा, शासन को चमकायेगा ।
स्वय मोक्ष में जाकर कुण्डा, अन्दर से अटकायेगा ॥
अपने से पीछे वालो को, पीछे ही लटकायेगा ।
देखा जायेगा फिर से जब, पहला आरा आयेगा ।
शासन से सबधित इसका, पुण्य भरा इतिहास सुनो ॥
भूत भविष्यत् वर्तमान का, रख करके विश्वास सुनो ॥

भवदेव . भावदेव

मगधदेश सुग्रीव गांव में राबड विप्र रेवती नार ।
गांव मुखी था परम सुखी था, सभी दृष्टि से द्विज परिवार ॥
घर पर गाएँ भैंसे रहती, बहती पय-दधि की नदियाँ ।
कितनी सुखद हुआ करती थी, बहुत पुरानी वे सदियाँ ॥
सुत भवदेव बडा, लघु अगज भावदेव था जिसका नाम ।
एक देह सम स्नेह अतुलता, मानो जनमे लछमन-राम ॥
माता-पिता मरे दोनो ही, रहे मात्र भाई-भाई ।
किस नर के सर किस युग में, फिर, कहो न विपदाएँ आई ।
घर का बोझ उठाना मन का, बोझ मिटाना कठिन बडा ॥
लघु भाई को धैर्य बधाना, बड़े बधु के स्कंध पडा ॥
सभी कुटुम्बी सुखावलम्बी, दु.ख मे देते साथ नही ।
कभी न कहते कोई उनसे, घबराने की बात नही ॥

भवदेव की दीक्षा

सुस्थित नामक सूरि पधारे, साधु-सघ को लेकर साथ ।
वन्दन करने प्रवचन सुनने आये बैठे जोड़े हाथ ॥

सुन प्रवचन भवदेव विरागी, बना श्रमण बन जाने को।
दीक्षित करना नही चाहिए, किसी नये अनजाने को ॥
परिचय पूर्ण मिला तब गुरु ने, परखा इसका चित्त विरक्त।
बड़े कड़े नियमो का परिचय, दिया साधु बनने के वक्त।
दीक्षित होकर गुरु चरणो में, मुनि अब करते ज्ञानाभ्यास।
ज्ञानाभ्यास बिना कब होता, आत्म सिद्धि पर दृढ विश्वास ॥
पांच महाव्रत पालन करते, पालन करते पंचाचार।
संयम-शुद्धि विघातक होता, लिए साधु के स्वेच्छाचार ॥
अविनीतो की संगति से मुनि, हो जाते गुरु के अविनीत।
सेवा-विनय-नियम शासन के, वे बोला करते विपरीत।
गुरु आज्ञा सम्मुख रख चलते, विनयी कहलाने वाले।
गुरु गुरु भाई शिष्य संघ पर, अपना भार नही डाले ॥

चिन्तन की रात

लेते ज्ञान सुगुरु से जो भी, देते जन जन को वह ज्ञान।
ज्ञान बढाने हेतु ज्ञान का, उत्तम है आदान-प्रदान ॥
मैने सयम लिया किन्तु है, मेरा लघु भाई घर पर।
सारे घर का भार बोझ भी, उसी अकेले के सर पर ॥
उसको अब उपदेश सुनाकर, करूँ सम्मिलित मुनिगण में।
व्यक्ति-व्यक्ति में गण रहता है, मण ज्यों रहता कण-कण में ॥
आज्ञा लेकर श्रीसद्गुरु की, जाऊँगा भाई के पास।
मेरे भाई का मेरे पर, पूर्ण और पक्का विश्वास ॥
मेरे समझाने से सयम, कर लेगा स्वीकार तुरन्त।
इस चिन्तन मे जग कर मुनि ने, सुख से किया निशा का अन्त।

स्तंभ समाप्ति

दोहे

प्रथम स्तभ का कर दिया, पुष्कर ने निर्माण।
तप-जप-सयम-स्नेह ने, जिसमें फूँके प्राण ॥
महावीर की देशना, देती आत्मिक ज्ञान।
ज्ञान बिना होती नही, जीवाऽजीव पिछान ॥
हुई प्राथमिक भूमिका, पूर्णतया तैयार।
इस पर 'पुष्कर' कर रहा, महल खड़ा सुखकार।



द्वितीय स्तम्भ

मंगलाचरण

दोहे

सयम की शुभ-भावना, बनो बहुत बलवान।
पुष्कर निर्बल भावना, कब बनती फलवान।।
सबको करना चाहिए, दृढ दृढ़तम सकल्प।
दृढ संकल्प फलान्विति, समय लगाती अल्प।।
अच्छा करने के लिए, अति दृढ़ करें विचार।
पुष्कर ये दो हाथ ही, होते हाथ हजार।।
दिल की दुर्बलता हमें, दबा रही दिन रात।
पुष्कर करता ही नही, कमजोरी की बात।।
देखो मुनि भवदेव के, फलते सुदृढ विचार।
स्तभ दूसरे ने लिया दृढ़ता का आधार।।

राधेश्याम

उपदेश के लिए आज्ञा

मुनि भवदेव सुबह होने पर, गुरु-वन्दन करने आये।
रात्रि समय का चिन्तन सारा, गुरु के सम्मुख रख पाये।।
बोले दो आदेश मुझे मै, भाई को भी समझाऊँ।
उसके जीवन की गुत्थी के, तार-तार मै सुलझाऊँ।।
एक शिष्य दे साथ ओर जो, देता रहे मुझे सहयोग।
एक-एक मिल ग्यारह होते, ऐसा कहते उत्तम लोग।

गुरुजी ने आदेश दे दिया, कार्य धर्म का पहचाना।
देने को प्रतिबोध किसी के, लिए नही वर्जित जाना ॥

यह सांसारिक भाई अपना, जाना इसको समझाने।
संभव है भाई का कहना भाई प्रेम सहित माने ॥

भ्रातृ-दर्शन

करते हुए विहार आ गये, अपनी जन्मभूमि में सन्त।
शुद्ध स्थान उद्यान जानकर, मुनि का मार्ग कठिन अत्यन्त ॥

सुना आगमन मुनिजी का तब, भावदेव ने पाया हर्ष।
मेरे भाई सन्त पधारे, चलूं करूं चरणों का स्पर्श ॥

वर्ष वहुत हो गए न आये दीक्षा लेने के पश्चात।
पता नही ये कैसे है अब, अन्य कौन मुनि होगे साथ ॥

भ्रातृ-सुख एक सौभाग्य

आया दर्शन पाया सुख से मुख से पूछी सुख-साता।
आता कहने मे क्या वह सुख जब मिलते-भ्राता-भ्राता ॥

भाई भाई ही है आखिर, मुनि हो चाहे संसारी।
मिलता कहां पीठ का भाई, भाई की महिमा भारी ॥

भाई के कहने से भाई-महावीर दो वर्ष रुके।
भाई लछमन राम-नाम के, आगे रहते झुके-झुके ॥

श्री वलभद्र कृष्ण की जोडी, कितना अरस-परस था प्यार।
पांचो पांडव रहे साथ में, जीत हुई हो चाहे हार ॥

जिसके वडा न छोटा भाइ, वह होता किसका भाई।
भुजा एक ही रह जाती है, गिन लो दाँई या बाँई ॥

वारह घर मे भाई का घर, जन्मकुण्डली में होता।
"जितने भाई उतने ही घर" सत्य कहावत मे सोता ॥

सुख की चर्चा

भावदेव बोला मुनिजी से, अभी हुआ मेरा उद्वाह।
मडन विधि को छोड अधूरी, आया धर मन में उत्साह ॥
मुनि बोले क्या भाई ! तेरा, अभी अभी उद्वाह हुआ ?
खैर हुआ सो हुआ समझ लो, कोई नही गुनाह हुआ ॥
अब भी जागो, जग सुख त्यागो उठो आत्म-सुख पाने को।
आये है हम इसीलिए बस, सत्य तुम्हे समझाने को ॥
इन्द्रिय सुख, सुख नही दु:ख है, विषय-भोग दुख है सारा।
जिसकी परिणति दु.खमय वह सुख, मधु-मिश्रित असि की धारा ॥
जो है अभी, अभी मिट जाता, वह सुख सच्चा कभी नही।
जो सुख है वह कभी न मिटता, उसको पाते सभी नही ॥
जिस सुख मे कुछ नही चाहिए, वह सुख एक निराला है।
वही मोक्ष सुख, वही आत्म-सुख, अमृत वाला प्याला है ॥
सांसारिक सुख, सुख है ऐसा, सिर्फ मानते संसारी।
तन सुख, मन सुख, धन सुख परिजन सुख की संख्या निरधारी ॥
तन रोगो से भरा हुआ मन–चिन्ताओ से घिरा हुआ।
धन कष्टो से जुडा हुआ परि–जन सुख पल-पल उडा हुआ ॥
पत्नी का सुख सतति का सुख, मित्रो का सुख है मनहर।
सब पर राग स्वय का सुख है, उसे हटा देखो क्षण-भर ॥
सारे दु:ख ही दु.ख दीखेगे इस पर ध्यान दिया किससे।
भ्राति विवर्जित सत्य शाति का, अनुपम पान किया किसने ॥

दीक्षित हो जाओ

दोहे

भांपे मुनि, भवदेव ने, भावदेव के भाव।
प्रवचन का मन पर पडा, दिखता प्रगट प्रभाव ॥

लो संयम, तज वासना, हो जाओ तैयार।
सोचो इस संसार में, है क्या कोई सार॥
मैंने छोडा आप भी, छोड़ो घर का मोह।
जोड़ो नाता त्याग से, जिसमें नित आरोह॥
उत्तम अवसर फिर नही, आता बारम्बार।
भाई का कहना करो, शीघ्र स्वयं स्वीकार॥
पुण्य धर्म की प्रेरणा, देते आये सन्त।
भ्रातृ-स्नेह की भावना, बल देती अत्यन्त॥

हाँ कह दी

भावदेव ने भावुकता से—हाँ कह दी मुनि के आगे।
नव परिणय के बधे हुए जो, टूटे नही अभी धागे॥
नव परिणीता अर्ध-मंडिता, पत्नी रही प्रतीक्षा कर।
भावदेव की हुई भावना, एक बार तो दीक्षा पर॥

नागिला के सामने

अनुमति लेने को गए, निज पत्नी के पास।
बोले अब मेरा नही, परिणय पर विश्वास॥
मुझको अब गृह त्याग की, अनुमति दे दो आप।
आप अकेली भोगना, अपने सुख-संताप॥
स्त्री बोली प्रियतम सुनो, सरल न संयम-पथ।
ऐसे क्या आता कभी, काम-क्रोध का अन्त॥
कठिन साधना व्रत कठिन, कठिन श्रमण आचार।
कठिन परीषह जीतना, करना कठिन विहार॥
कठिन केश-लुंचन-क्रिया, कठिन त्यागना राग।
कठिन कठिनतम पालना, लिया हुआ वयराग॥
सोचो समझो शांति से, तोलो मन की शक्ति।
घर पर रह कर क्या नही, हो सकती है भक्ति॥

मेरा क्या होगा कहो, इस पर करो विचार ।
खारा कैसे हो गया, प्यार भरा संसार ॥
अर्धमंडिता को मुझे, प्रिय ! जाते हो छोड़ ।
कभी न करनी चाहिए, किसी व्यक्ति की होड़ ॥

भावदेव की भावना

सोच लिया अच्छी तरह, करके तर्क-वितर्क ।
मेरे निर्णय में नही, अब आ सकता फर्क ॥
कर सकते सब कुछ सहन, ये मेरे ही भ्रात ।
कर पाऊगा मै न क्यो, है क्या ऐसी बात ॥
घर तेरा तेरे लिए, कभी न कोई एक ।
देख रेख रखना स्वय, रखकर परम विवेक ॥
मर्यादाओ का सदा, रखना अपना ध्यान ।
जिससे कुल का गांव का अपना हो कल्यान ॥
नही हमारे नाम पर, आये कही कलंक ।
प्रभु के प्यारे नाम पर, जीना नित नि.शक ॥
चाहे तुम कुछ भी कहो, अश्रुपात के साथ ।
रुकने झुकने की नही, रही हाथ की बात ॥

नागिला की स्थिति

मन को स्थिर कर तन को स्थिर कर, किया वचन को भी अति स्थिर ।
मानो लेने लगी नागिला, बिना काल के निद्रा चिर ॥
जिसका अपना बल चलता तो, क्यो बनती नारी अबला ।
जिसकी विविध विवशताओ पर, बजा न करता क्या तबला ॥
यह क्या हुआ साथ में मेरे, मेरे ही प्रिय के द्वारा ।
मुझे अभी भी क्यो लगता है, भावदेव केवल प्यारा ॥
"यह क्यो" हुआ साथ मे मेरे, कारण कौन बताये स्पष्ट ।
क्या पति अपनी प्रिय पत्नी को, पहुँचा सकता इस विधि कष्ट ॥

अघटित घटित हुआ "यह कैसे" पति ने पाया पूर्ण विराग।
बिना स्नेह के बिना वाट के, बुझता माना गया चिराग ॥
"अब क्या होगा" इस शका का समाधान किससे पाऊं।
मूषक बिल से कैसे निकले, दिख जाए वैठी म्याऊं ॥
गृह सपत्ति प्राप्त नव यौवन, यह जीवन का लगता भार।
क्या मेरे ऐसे जीने से, कोई निकल सकेगा सार ॥
बोले बिना बिना डोले ही, और बिना खोले ही आंख।
अनुमति दे दी है दीक्षा की, भोले पति के सम्मुख झांख ॥

विश्वास दिलाया

जाओ मेरा फिक्र न करना, फिक्र नही घर का करना।
करना भला स्वय का जग का, भला भ्रातृ वर का करना ॥
मै जीऊंगी धर्म सहारे, और सहारे ईश्वर के।
केवल मेरे क्या है वो, रक्षक सकल चराचर के ॥
होगा शील सहारा मेरा, होगा शील सहारा श्रम।
बना लिया जायेगा निश्चित, श्रम आधारित कार्यक्रम ॥
निन्दा चुगली विकथा-वार्ता, श्रृंगारो से काम नही।
परिवारो से काम नही, सम-अधिकारो से काम नही ॥
मैं विश्वास दिलाती अपना, अपना नियम न तोड़ूगी।
आदर्शो की कडियो मे कुछ, नूतन कडियाँ जोड़ूगी ॥

दीक्षा और आशीर्वाद

सूने मन से सूनेपन से सुन, निकला घर से तत्काल।
भाई के सम्मुख आ करके, हुआ उपस्थित कहता हाल ॥
मुनि ने पाँच महाव्रत देकर, शिष्य बनाया भाई को।
लुंचन करने वाले मुनि क्या, पैसा देते नाई को ॥
लेकर नये शिष्य को आये, श्री आचार्य देव के पास।
आशीर्वाद दिया गुरुवर ने, पूछा जाता सब इतिहास ॥

संयमी शिक्षाएँ

गुरु ने कहा—लिए संयम को, अच्छी तरह निभाना तुम ।
कभी प्रमादाचरणो द्वारा, मलिन न इसे बनाना तुम ।।
सेवित उज्ज्वल संयम पट पुर, दाग न एक लगाना तुम ।
जैन धर्म की ज्योति अखंडित, जग मे नित्य जगाना तुम ।।
सभी साधुओं से मिल रहना, सेवा सदा बजाना तुम ।
निज को, कुल को, जिन शासन को, गुरु को नही लजाना तुम ।।
रास्ते जाना रास्ते आना, उज्ज्वल सुयश कमाना तुम ।
चार तीर्थ में अपनी ऊची, अच्छी साख जमाना तुम ।।
पांच महाव्रत पांच समितियां, तीन गुप्तियाँ सयम धन ।
चुरा न ले जाए छुप-छुपकर, अपने ही अन्तर दुश्मन ।।
बड़ी सावधानी से रहना, कहना वचन कठोर नही ।
किसी अन्य को शिथिल देखकर, खुद होना कमजोर नही ।।
औरों पर उगली न उठाना, लाभ उठना घटना से ।
सभी गाडियां कब चलती है, राजगृही या पटना से ।।
जाओ विचरो भाई-भाई करना धर्म प्रचार सदा ।
शुद्ध विचार बिना कब बनता, शुद्धाहार-विहार सदा ।।
स्वय विज्ञ हो अज्ञ नहीं हो, हम भी तो सर्वज्ञ नही ।
अल्प वचन से अधिक सूचना, ले सकते अल्पज्ञ नहीं ।।

विहार और प्रचार

गुरु आज्ञा पा भाई भाई, लगें विचरने अब अन्यत्र ।
सन्त-जनो के त्याग भाव को, सम्माना जाता सर्वत्र ।।
भाषण करते जनभाषा मे, जिससे जनता पाती वोध ।
उपदेशो के साथ कथाएँ, उपजा देती अधिक विनोद ।।
सुनने वाले लोग तृप्ति का, अनुभव करते पाते ज्ञान ।
कहते किया आपने आकर, जन-जीवन का परमोत्थान ।।

भवदेव का स्वर्गवास

स्थान-स्थान पर विचर विचर कर, जन-जन का कल्याण किया ।
मुर्दा जीवन जीने वाले जन को नूतन प्राण दिया ॥
अन्त समय पर कर संथारा, स्वर्गवास मुनि ने पाया ।
कितने दिन तक साथ निभाती, नर की औदारिक काया ॥
स्मृतियाँ बनी हुई रहती हैं, जब तक रहती कुछ कृतियाँ ।
सबके सम्मुख अपनी अपनी, विधियां तथा परिस्थितियां ॥

भावदेव का अस्थैर्य

भावदेव अब रहे अकेले, आई निज पत्नी की याद ।
याद विषय भोगों की फीका—कर देती संयम का स्वाद ॥
जीवित है या कही मर गई, पता नही पाया मैंने ।
हाय हाय वह कैसे तज दी, मेरी ही छाया मैंने ॥
मेरे जैसा जडमति जग में, क्या है कोई व्यक्ति विशेष ।
प्रथम वार सुन लेने पर ही, मान लिया मुनि का उपदेश ॥
अब भी जाऊँ घर सुख पाऊँ, गले लगाऊँ नारी को ।
हल्का शीघ्र बनाऊँ अपने, बने हुए मन भारी को ॥

स्वाभाविक चिन्तन

जन जन क्या सोचेगे मन मे, जिनको मैं देता प्रतिबोध ।
मेरे वेष त्यागने पर क्या, उन्हे नही आयेगा क्रोध ॥
सघ प्रतिष्ठा पर धब्बा भी, मेरे लिए लगेगा फिर ।
मुनियो के प्रति सहज भाव से, क्या विश्वास जगेगा फिर ॥
क्या मेरे इस अभिप्राय को, पत्नी अच्छा मानेगी ।
अथवा पतित बनाकर मेरी, वज्रमूर्खता जानेगी ॥
मन से तो मै साधु नही हूँ, केवल पहन रखा है वेष ।
फिर क्यो सहन किया जाये यह, साधुपने का क्लेश-विशेष ॥

दुनिया को जो कहना होगा, वह कहलेगी खुल-खुलकर ।
मेरे लिए उचित क्या होता, मरना ऐसे घुल-घुलकर ।।

कोई आश्चर्य नहीं

अंतिम निर्णय लिया चले है, अपने घर-पर जाने को ।
मन ही चढने को कहता है, मन कहता गिर जाने को ।।
दोष किसी का नही दोष है, अपनी मनोवृत्ति का मात्र ।
किसी पाठशाला में पढकर, सभी पास कब होते छात्र ।।
चलने वाले राही ही तो, रास्ता भूला करते है ।
डाली टूटा करती उनकी, जो नर झेला करते है ।।
गिरते जो घोड़े चढ़ते वे, नही पिसारी गिर सकती ।
उपल बीनने वाली बुढिया, क्या सेना से घिर सकती ।।
करो नही आश्चर्य तनिक भी, गिरना माना है आसान ।
बहुत परिश्रम-साध्य बताया, मानव जीवन का उत्थान ।।

जन्मभूमि के दर्शन

जन्म भूमि में आये उतरे, गये वन्दना करने लोग ।
माना जाता रहा सदा से, संत आगमन को शुभ योग ।।
गई नागिला मुनि दर्शन को, साबालिक लडकी के साथ ।
नही अकेले जाना स्त्री के, लिए समझदारी की बात ।।
सादा वेष केश भी रूखे, रूखे मन के भाव विशेष ।
गहने पहने नही अंग पर, सुनने को आई उपदेश ।।

सोचने की बात

नही सगो के घर जाना है, जाना है संतो के पास ।
फिर क्यों इतना सज-धज जाना, क्यो न सादगी पर विश्वास ।।
सामायिक में पौषध व्रत मे, पढ़ना है समता का पाठ ।
अथवा दिखलाते है बोलो, सचमुच सेठाई का ठाठ ।।

रूप चेलणा रानी का लख, मुनियो का मन डोल उठा ।
श्रेणिक जैसा पति पाने को, सतियो का मन बोल उठा ।।
भूलो मत इन इतिहासो को, रखो सामने कुछ आदर्श ।
संतो को करना न पडे ज्यो, कभी विचारो से सघर्ष ।।

मुनि की बात

वन्दन करके बैठ गई है निज पति को पहचान लिया ।
मुख मुद्रा क्यो अप्रसन्न है, मन ही मन अनुमान किया ।।
मुनि बोले, क्यो नही नागिला, आई दर्शन करने को ।
क्या उसका जी नही चाहता, भव सागर से तरने को ।।
इसने सोचा मुनि को क्यो हो, परिचय बहन विशेषो से ।
मुनि की रुचि होती श्रोता से, श्रोता की उपदेशों से ।।
मुनि ने कहा, उसे कहना तुम, मुनिजी करते तुमको याद ।
प्रवचन अभी न होने वाला, फिर क्यो समय करो बरवाद ।।

दोहा

लगी सोचने नागिला, क्या कहते मुनिराज ।
पहचाना मुझको नही, कहती है आवाज ।।
सती नागिला से कहो, मिलने का क्या काम ।
अन्य किसी का क्यो नही, लिया आपने नाम ।।
बचपन की स्मृतिया बहुत, जुडी उसी के साथ ।
करनी है उससे मुझे, सुख दुख की दो बात ।।
भूल गई वह या मुझे, करती भी है याद ।
जो पाया वह जानना, परमाल्हाद विषाद ।।

कड़े स्वरो मे बडे जोर से कहा नागिला ने कर-बद्ध ।
स्त्री से मिलना उचित न मुनिजी ! सत आप सयम से नद्ध ।।
अगर देखना उसे चाहते, है वह मेरे ही जैसी ।
शान-शकल भी और अकल भी, समझो ऐसी की ऐसी ।।

मेरे जैसी दुबली पतली, करती आयंबिल उपवास।
जैनधर्म सम्यग्दर्शन पर, उसका पूर्णतया विश्वास ॥
शील सत्य पर समता-तप पर, सादेपन पर मरती है।
नही अकेले किसी पुरुष से, बातचीत भी करती है ॥
सादा खाती सादा पीती सादा जीवन जीती है।
मिलने उसे बुलाना अपनी, समझो बडी फजीती है ॥
मुनि बोले, वह फूल गुलाबी, तुम हो मुरझित हुई कली।
तुम बकवास बनाने वाली, वह कमबोली नेक भली ॥
वह गौरांगी चन्द्रमुखी है, दुखी विरह से पीडित तन।
तेरी उसकी तुलना करना, क्या न दिखाना ओछापन ॥

सत्य खुल गया

मै ही हूँ वह स्वय नागिला, जिसे छोडकर आप गये।
बधे प्रणय के कच्चे धागे, जिन्हे तोडकर आप गये ॥
रोके रुके नही मेरे से, संयम लेकर चले गये।
मैने सोचा बन वैरागी, ठुकरा करके भले गये ॥
आये आप तुरत मै आई, दर्शन पाकर देखा हाल।
याद सताती तुम्हें हमारी, संयम लेकर बने निहाल ॥

जाओ, प्रायश्चित करो

भाई ने कल्याण कर लिया, उतर गए भवजल से पार।
आप डूबने मुझे डुबोने, रहो यहा पर भले पधार ॥
लड्डू बने बूर के उन पर, भोला मन ललचाता है।
संयम छोड गृहस्थी बनना, नही समझ में आता है ॥
मै न चाहती तुम घर आओ, जाओ अपने गुरु के पास।
प्रायश्चित्त करो दोषों का, करो तपस्या का अभ्यास ॥
जियो इसी में मरो इसी में, सार इसी मे है सारा।
कोई नही यहां पर प्यारी, कोई न यहां पर प्यारा ॥

जग की सारी माया झूठी, झूठा है इस मन का प्यार ।
आजीवन व्रत लिए आपने, फिर तजने का क्या अधिकार ।।

आँख खुल गई

मुनि की आँखे खुली धुली है, मलिन भावनाएँ तत्काल ।
ज्ञानी जन अपनी आत्मा को, भली भाति लेते संभाल ।।
सूत्र सहित जो सूचि कही पर, खो जाने पर मिल जाती ।
दोषो की दृढ भित्ति ज्ञान से, जरा हिलाये हिल जाती ।।
करने लगा प्रशंसा मुनि अब, धन्य धन्य तुम हो नारी ।
जितनी प्यारी उतनी खारी, जाऊं तेरी बलिहारी ।।
जो दृढ़ होती नही आज तुम, तो मैं पथ से गिर जाता ।
मोह जाल मे फँस कर आठो, कर्मो से मैं घिर जाता ।।
अच्छा हुआ आज का आना, चिन्तन मन का साफ हुआ ।
पाप हुआ जो कह देने से, एक बार तो माफ हुआ ।।

प्रायश्चित्त और स्वर्गवास

गये सुगुरु की सेवा मे मुनि, अपना दोष किया स्वीकार ।
प्रायश्चित्त दिया जाता है, मुनि आचार-विचार विचार ।।
लगे तपस्या करने में अब, कही भावना नही मलिन ।
मन इतना निर्मल कर डाला, जितना निर्मल नव्य नलिन ।।
गये तीसरे देवलोक मे, अंतकाल मे कर अनशन ।
कितनी शिक्षाएँ देता है, भावदेव मुनि का जीवन ।।

पूर्त्तिगत स्तम्भ

हुआ दूसरे स्तम्भ का, सुरुचिपूर्ण निर्माण ।
उभय वधुओ ने किया, आत्मा का कल्याण ।।
जीवन के पहलू प्रवर, पतन और उत्थान ।
पुष्कर मुनि देता सदा, उभय पक्ष पर ध्यान ।।

दोष दोष; गुण गुण सदा, चाहे जो हो पात्र ।
किसी योनि में जीव हो, होता ही है गात्र ॥
दोष हेय आदेय गुण, सशय का क्या काम ।
दोष निवारण कर करो, जो करना आराम ॥
मेरे प्रिय पाठक ! सभी, गुणग्राही हों सिद्ध ।
गुण-ग्राहकता के बिना, होती कृति न प्रसिद्ध ॥
गुरुवर की आशीष का, पुष्कर को आधार ।
इसीलिए होती सदा, दुष्करता की हार ॥

●

तृतीय स्तम्भ

मंगलाचरण

दोहे

पुष्कर स्तम्भ तृतीय की, रचना करना रम्य ।
सरल सरलतम बन सके, जिससे ज्ञान अगम्य ।।
शब्द फैलते लोक तक, फिर होते श्रुतिगम्य ।
करे शब्द रचना सुखद, रखकर शक्ति अदम्य ।।

देव से नर

गये स्वर्ग भवदेव जो, सुनना उनका हाल ।
जल देने को घूमती, अरहट की घटमाल ।।
नगरी पूर्व विदेहस्थित, पुण्डरीकिणी एक ।
स्वर्गपुरी भी झूमती, इसकी रचना देख ।।
वज्रदत्त वसुवेश का, शासन चलता तत्र ।
न्याय-नीति-सद्धर्म सुख, फैल रहे सर्वत्र ।।
रानी नाम यशोधरा, शील सत्य की धाम ।
वनिता, सुत, सतसंग है, तीन बड़े विश्राम ।।
रूप मधुर, वाणी मधुर, मधुर मधुर व्यवहार ।
लिया मधुरता ने यहां, एक नया आकार ।।
आभूषण प्रिय थे नहीं, प्रिय थे गुण अत्यन्त ।
अवगुण थे अप्रिय वहुत, मानो अग वसंत ।।
अभिलाषा थी एक ही - हो कोई संतान ।
सुत हो चाहे हो सुता, दोनो एक समान ।।

इच्छाबल हो पुण्यबल, कायाबल हो साथ ।
ऋतु आने पर क्यों ना फिर, सुतफल हो साक्षात् ॥
रानी गर्भवती बनी, श्रेष्ठ स्वप्न अनुसार ।
जीव वही भवदेव का, लेता है अवतार ॥

खुशकिस्मत से सुत हुआ, बहुत बहुत पुनवान ।
जन्मोत्सव से शहर की, बढी सौगुनी शान ॥

पुर मे सागर हर्ष का, लेता देख हिलोर ।
सागरदत्त कहा इसे, नाम न कोई और ॥

पार न प्यार-दुलार का, पलता राजकुमार ।
बालक को भगवान का, कहा गया अवतार ॥

शैशव की श्रेष्ठता

बालक के तन-मन दोषों से, कोसों दूर हुआ करते ।
खेलो कूदो जीओ बेटे, सारे लोग दुआ करते ॥
शिशु की आंखो में अमृत का, बहता रहता नित्य प्रवाह ।
किसी समय भी इन्हे किसी की, होती कभी नही परवाह ॥
मां की गोदी में जाना तो, गोदी में ही जाना है ।
गोदी में जो नही उठाए, तो रोना चिल्लाना है ॥
शिशु को सभी चाहते लेते, छोड़ अधूरा घर का काम ।
काम और है ही क्या घर, पर जहां नहीं हो शिशु का नाम ॥
यही काम है यही धाम है, यही गिनो आराम बडा ।
माता-पिता बहन-भाई के, जीवन का विश्राम बडा ॥
यह अपना यह अन्य किसी का, शिशु को होता ज्ञान नही ।
भेदभाव की रेखा वाले, बन पाते भगवान नही ॥
मन की व्यथा छुपाकर रखना, तन को ढंकना क्या जाने ।
कोई किधर भले ही झांके, शिशु अपने में दीवाने ॥

किसी अग पर किसी रंग पर, किसी ढग पर व्यग नही ।
किस राजा के वच्चे वोलो, मां को करते तग नही ॥

अपने पर

समझदार होते ही शिशु को लोग सिखाते सारे दोप ।
दोपो को गुण वतलाते है, इसीलिए होता अफसोस ॥
वालक थे हम वालक रहते, तो न हमे कुछ करना था ।
नही सांप से नही विच्छु से, नही किसी से डरना था ॥
किसी चोट का किसी खोट का, किसी ओट का नही प्रभाव ।
वचपन गया उसे जाना था, रह जाता शिशु सदृश स्वभाव ॥

शिक्षण और उद्वाहन

आठ वर्ष के होने पर अव, शिक्षण हेतु बिठाते हैं ।
जीवनोपयोगी शिक्षाएँ, कलाचार्य से पाते है ॥
वचपन बीता यौवन आया, धूमधाम से हुआ विवाह ।
राजकुमार स्वयं देते अब, समय-समय पर नेक सलाह ॥
वचपन मे मां का मुख मिलना, माना जाता भाग्य बडा ।
यौवन में स्त्री का मुख मिलता विना भाग्य के कहां पडा ॥
मिले वुढापे में मुख मुत का, तो किस्मत समझो अच्छी ।
वास्तव मे अपनी ही करणी, कही-कही रहती कच्ची ॥
पति-पत्नी सुखपूर्वक रहते, लेते जीवन का आनन्द ।
कभी वोलना खाना-पीना, किया नहीं दोनो ने बन्द ॥
एक दूसरे की इच्छा का, करते दोनो आदर-मान ।
होता स्त्री पति, पति स्त्री का, क्या न परस्पर पूरक-प्रान ॥

वैराग्य का कारण

दृष्टि गगन की ओर एक दिन, राजपुत्र की घूम रही ।
नीलगगन की अनुपम शोभा, चित्र सामने झूम रही ॥

देखा एक बड़े बादल को, मेरु तुल्य जिसका आकार ।
अभी अभी बरसेगा तो यह, मच जायेगा प्रलयकार ।।

आया पवन इधर से ऐसा, उसे उडाकर साफ किया ।
माफ कौन करता है उसको, जिसने कोई पाप किया ।।

देख जलद की क्षणिक संपदा, राजपुत्र को ज्ञान हुआ ।
इस जग में प्रत्येक द्रव्य का, बादल सम संस्थान हुआ ।।

बनना और बिगडना क्षण में, क्षण-क्षयी है अतः पदार्थ ।
जीने का स्थिर रहने का फिर, क्या अभिमान हमारा सार्थ ।।

क्या हम मोह करे माया से, इस जाने की हलचल में ।
कितने आते कितने जाते, कितने रहते पल-पल में ।।

मन का चिन्तन स्फुरण ज्ञान का, नही भोगने देता भोग ।
समाधान ढूढा करते है, उठे हुए प्रश्नों का लोग ।।

अणगार और उपदेश

इस अवसर पर उसी नगर मे, आये एक बड़े अणगार ।
अणगारो के द्वारा होता, आत्मधर्म का साक्षात्कार ।।

सागरदत्त गया सेवा में, सुनने को उपदेश भला ।
उपदेशो का असर न होता, जो देने की हो न कला ।।

गुरुजी ने जीने मरने का, आँका कुछ भी नही महत्व ।
बडा महत्व उसी का आंका, जीकर जिसने समझा तत्त्व ।।

जन्म-मरण का प्रकरण क्षण-क्षण पढता आया पृथ्वी तल ।
चल-चल कहती बहतीसरिता, जिसको हम कहते कलकल ।।

जन्म लिया क्यो और मरा क्यो, जन्म-मृत्यु मे क्या है भेद ।
रोग रहित का रोग सहित का, सदृश नही होता प्रस्वेद ।।

क्या इस गोरख धंधे का भी, कभी अत आ सकता है ।
क्या यह जीव अजन्मा बनकर, परम शाति पा सकता है ।।

स्थान एक ही है ऐसा जो, कहलाता है धाम परम ।
जिसको पाने करम खपाने, माने जाते करम धरम ॥
बंध मोह है मोह जगत है, जगत यही बंधन सारा ।
चन्दन के वन में होता है, चन्दन ही चन्दन सारा ॥
मोह नही हो यही मोक्ष है, मोक्ष नही आत्मा से दूर ।
नदी पूर है पूर नदी है, भिन्न नदी से कभी न पूर ॥
मोह हटाओ मोह घटाओ, अन्य उठाओ कष्ट नही ।
आत्मवादियों के हित पुष्कर-पदावली परिक्लिष्ट नही ॥

दीक्षा के लिए

दत्तचित्त सुन राजपुत्र श्री - सागरदत्त प्रबुद्ध हुआ ।
दृष्टिकोण जीवन के प्रति, अब अपने आप विशुद्ध हुआ ॥
आया मातृ - पितृ - चरणो में, रखे मनोगत सारे भाव ।
दीक्षा लेने की इच्छा का, कारण मानो आत्म-स्वभाव ॥
नही अभाव वस्तु का कोई, नही अभाव समादर का ।
नही अभाव स्वास्थ्य का, स्त्री का नही अभाव किसी स्तर का ॥
स्वाधीनो की त्याग-भावना, वास्तव में कहलाती त्याग ।
पराधीन के त्यागो में कुछ, शेष स्वतः रह जाता राग ॥
दीक्षित होने की अनुमति भी, देना कोई सरल नहीं ।
जिसको अपना माना हो तो, छोड़ा जाता गरल नही ॥
धन्य धन्य वह माता अपने, आत्मज को देती संयम ।
धन्य पिताजी धन्य प्रिया जो, नही रोकती दीक्षा क्रम ॥
दीक्षोत्सव करने वाले जन, धन्यवाद के पात्र सभी ।
धन्य पाठशाला होने से धन्य धन्य हैं छात्र सभी ॥

दीक्षोत्सव के समय

धूम-धाम से गई निकाली, वैरागी की वदोली ।
त्याग तपस्या अपनाने को, बढ चढ दी जाती बोली ॥

खमतखामणा करते सारे, नजर पसारे वैरागी ।
वैरागी ने हाथ जोड़कर, क्षमा सरलता से मांगी ।।
जाता है जो छोड जगत को, क्यो ले जाये मन मे पाप ।
जो न माफ करता ओरो की, उसको होता पश्चात्ताप ।।

शंका-समाधान

करते राज्य शांति से, पीडा, हरते प्रजाजनो की आप ।
"क्यो दीक्षा लेते हो" क्या यह, लिए आपके कही न पाप ।।
करते मात-पिता की सेवा, लेते निज कधो पर भार ।
क्या इनका कुछ नही आपके, सर पर किंचित् भी उपकार ।।
जिसका पाणिग्रहण कर लाये, बनते उसके लिए शरण ।
वृद्धावस्था में ले लेते, जो लेते हो अभी चरण ।।
मित्रमंडली जो होती तो, कभी नही जाने देती ।
जाने देना दूर रहा यह, भाव नही आने देती ।।
सुख है हमको क्यों न आपको, सुख लगता इन योगो में ।
क्या अतर है किसी बात का, आप और हम लोगो मे ।।
राजपुत्र हो आप और हम, श्रेष्ठिपुत्र प्राध्यापक-पुत्र ।
कोई मोटा कोई पतला सभी कातते जीवन-सूत्र ।।
सोचो अभी विचारो मन से, शांत किया जाये वैराग ।
क्या न बुझाई जा सकती है, दियासलाई वाली आग ।।
राजपुत्र ने कहा आप सब, करते हो बाहर की बात ।
मै जो कहता हूँ करता हूँ, परमात्मा के घर की बात ।।
सुख वैषयिक क्षणिक है सारे, आत्मिक सुख है नित्य अनंत ।
आत्मिक सुख पाने को ही यह, बना त्याग का ऊँचा पंथ ।।
भेद विचारो में होता है, भेद न खाने-पीने में ।
बहुत बडा अतर होता है, अपने जीने जीने मे ।।

"जीते जी मरजाने को" ही, संयम जीवन नाम दिया ।
"मरने को ही जीना है" बस, इसी तरह का काम लिया ॥
"जीना जग के लिए" इसी का, नाम रखा त्यागी-जीवन ।
कर्मो के अवशिष्ट भोग भी, करने पड़ते शमन दमन ॥
कष्ट देना नही किसी जीव को स्वय कष्ट पा लेना स्पष्ट ।
इष्ट यही है प्राणिमात्र का, होने देना नही अनिष्ट ॥
अनुभव किए विना संयम का, ज्ञान नही हो सकता प्राप्त ।
आशा है अव सब प्रश्नो को, करो यही पर आप समाप्त ॥

दीक्षा के बाद

गुरु-चरणो मे संयम धारा, तरने को भव सागर से ।
सागर की गहराई मापी, जाती कभी न गागर से ॥
धीर वीर गंभीर मुनीश्वर, दूर प्रपंचो से रहते ।
सत्य शाति के बारे में ही, अपने मंचो से कहते ॥
तप-जप करते करवाते थे, गप-शप करते आप नही ।
यही सोचते स्वय अहर्निश हो जाए बस पाप नही ॥

संत जीवन

सत सभी के होते, सम्मुख-सतो के है सभी समान ।
जो शिष्यों को ज्ञान सिखाते, वही सिखाते सबको ज्ञान ॥
जो श्रावक के घर से लेते, अन्न-वस्त्र का दान महान ।
वही अन्य से भी ले लेते, नही टूटता कही विधान ॥
माधुकरी से प्राप्ताशन मे, ढूढा करते स्वाद नही ।
स्वाद-विवर्जित अशन ग्रहण कर, होता चित्त विषाद नही ॥
सोते हुए सतत जगते मुनि, जगते हुए बहुत सोते ।
संत फकीरो के ऐसे ही, कुछ उलटे धन्धे होते ॥
बैठे बैठे हँसने लगते, रोने लगते संत कभी ।
संतो के हँसने रोने का, राज न देते सत कभी ॥

वन में कभी कभी उपवन में, शून्यभवन में कभी कभी ।
तन में कभी कभी निज मन में, जिन प्रवचन में कभी कभी ॥

कभी बोलते बतलाने से, कभी बोलते अपने आप ।
कभी खोलते आंखे मूदे मूदे जपते कोई जाप ॥

रहते सक्रिय अक्रिय होने, धोने को मल आत्मा का ।
आत्मा मे ही दर्शन पाते, पूर्णरूप परमात्मा का ॥

किसी संत के लिए सत ने, नही निम्न स्तर से बोला ।
जाना मर्म किसी का 'लेकिन, नहीं कही उसको खोला ॥

बोला पहले पीछे बोला, ढोला नही किसी के सर ।
अवसर आने पर ले लेते, भार स्वयं के सर ऊपर ॥

कहते हित-हित, सुनते हित-हित, सहते हित-हित कष्ट सभी ।
स्पष्ट स्पष्ट कहने वाले क्या, रहते है अस्पष्ट कभी ॥

जिसका पानी मरता हो वह, करता डरता-डरता बात ।
कहता वही निडरतापूर्वक, जिसका शुद्ध हृदय दे साथ ॥

मुनिजनं का विहार

जन जन में जिनधर्म-भावना-फैलाने को पाद विहार ।
करना मुनि के लिए उचित है, आगमानुमोदित अधिकार ॥

एक क्षेत्र से, एक स्थान से, एक व्यक्ति से प्यार नही ।
हो जाए, इसलिए उचित क्या, माना पाद-विहार नही ॥

जन सम्पर्क साधने के हित, साधन पाद-विहार नही ? ।
मिले विना मन खुले विना रख, पाते सत्य विचार नही ॥

देश काल का चाल-ढाल का, पाद-विहार दिलाता ज्ञान ।
पाद-विहारी प्रकृति पुजारी, अनुभव युत देते व्याख्यान ॥

कौन सुखी है कौन दुखी है, सुख-दुख के क्या है साधन ।
कौन कौन से व्यक्ति धर्म का कर पाऐंगे आराधन ॥

कैसे संस्कारों में किसका, पालन-पोषण होता है ।
कैसे साहूकारो द्वारा, श्रम का शोषण होता है ॥

नरक स्वर्ग क्या है वास्तव में, शहर गांव अथवा कुछ अन्य ।
प्रकृति जन्य सुख प्राप्त किसे है, किसे कहे हम धन्य अधन्य ॥

शुद्ध विचारो का साधन यदि, माने शुद्धाहार-विहार ।
इन सब बातो पर फिर से, कुछ करना होगा क्या न विचार ॥

नव्य चिन्तनो द्वारा मिलती, नई दिशाएं नया प्रकाश ।
सम्यग्दर्शन पर स्थिर होता, जैनधर्म का दृढ विश्वास ॥

सागरदत्त सत सुखकारी, सयम यात्रा करते हैं ।
कोई कहता नही उदर या, अपना पात्रा भरते है ॥

भावदेव की बात

महाविदेह क्षेत्र में नगरी, रम्य वीतशोका थी एक ।
अलका उर्वी पर क्यो आती, शरमाती जब इसको देख ॥

शासनरथ के लिए पद्मरथ सारथि सम थे नृपति समर्थ ।
समर्थता के बिना न होता, संविधान का सीधा अर्थ ॥

प्रजाजनो के दुख सुन लेना, कर देना उनका दुख दूर ।
ऐसे ही गुण कर देते है, नृपका नाम बहुत मशहूर ॥

विलासिता में डूबे नृपने कब चिन्ता की लोगो की ।
उसको तो चिन्ता रहती है, केवल विषयो भोगों की ॥

नही शिकार खेलने जाता, करता पशु पर नही प्रहार ।
उठती करुणा भरे हृदय से, दयाधर्म की सत्य पुकार ॥

द्यूत भूत से डरता रहता, सूत कातता संयम का ।
पीता नही शराब दाब से, पूर्ण प्रशंसक शम-दमका ॥

देता दान मान भी देता, होने देता मान नही ।
मान दान का होना क्या है दाता का अपमान नही ? ॥

लेने वालो से हित होता, देनेवाले का दिन रात ।
वह जो हीन-दीन मन हो तो, हित की कही न होती बात ॥
दयावान था दानवान था, ज्ञानवान था, था बलवान ।
किसी भूमि पर सुखद फलद सम, छाया-पत्र-पुष्प-फलवान ॥

अन्तःपुर का आलोक

अति सुकुमाला गुणमाला थी पटरानी श्रीवनमाला ।
अन्तःपुर का अमिट उजाला, उतरा अमृत का प्याला ॥
तन की सुन्दरता से बढकर, अति सुन्दर था शील-स्वभाव ।
बहुत भयंकर हो जाता है, हो जाए जो शील-अभाव ॥
सब लेती काम सभी को, देती काम तथा सम्मान ।
जो न काम ले दे सकती वह, करवा भी लेती अपमान ॥
उदासीनता आशा रखती, कभी मुझे भी आने दो ।
इस हँसमुख मुख का क्षण भर को स्पर्शमात्र ही पाने दो ॥
विष बोला मैने न बिगाडा, क्यो न जीभ देती विश्राम ।
काम अगर अमृत करता है, क्या न जहर कर सकता काम ॥
पति के सिवा पुरुष धरती के, भाई पुत्र पिता सम है ।
तन को लाज लाज अँखियन की, इतना होना क्या कम है ॥
आने-जाने-पाने-खाने में, न त्वरा से लेती काम ।
ऐसे कामो मे त्वरता भी, हो ,जाया करती बदनाम ॥
पति के इंगित आकारो पर, पूर्णतया देती निज ध्यान ।
समर्पिता स्त्री के जीवन में, नही अह को कोई स्थान ॥

एक इच्छा पूर्ण

भावदेव का जीव स्वर्ग से, च्यवकर आया इसकी कूख ।
किस नारी को रही न रहती, सत्य बताओ इसकी भूख ॥
स्त्री के विना गृहस्थी सूनी, स्त्री सूनी सतान विना ।
सतति स्नेह बिना है सूनी, जीवन सूना ज्ञान विना ॥

असावधानी कभी न रखती, रानी गर्भवती होकर।
पीछे रोने से अच्छा है, रहता पहले ही रोकर॥
बहुत बडी जिम्मेदारी का, भार वहन करती नारी।
कायिक वाचिक और मानसिक, परिवर्तन पाकर भारी॥
पूज्य मातृपद पाना कोई, सरल नही माना जाता।
प्रसव काल नारी का मानो, नया जन्म जाना जाता॥

जन्मोत्सव

वनमाला ने सुत जनमा है, नाच उठा आंगन सारा।
नाचा गगन धरा भी नाची, नाच उठा त्रिभुवन प्यारा॥
मंगलगीत प्रीत से गाये-जाते रीत पुरानी है।
कांसी की थाली बेलन से, छत पर वैठ बजानी है॥
बांटी गई बधाई सबको, जी भर दान दिया कर से।
कौन नही लेता है बोलो, मिलता जब नृप के घर से॥
आजीवन के वंदी जन भी, किए गए कारा से मुक्त।
जन्मोत्सव मे शामिल होना, लिए सभी के है उपयुक्त॥

नामकरण

दोहे

किया समय पर शांति से, नामकरण सस्कार।
शिवकुंवर शिवरूप है, अपना राजकुमार॥
कहदे टुकडा चांद का, कहदे फूल गुलाब।
कोर कलेजे की कहे, कोई नही जबाब॥
शांति प्रेम सुख जो कहो, कहे सुधा का सिंधु।
कहता मन क्या क्या कहे, कहे इसे शरदिन्दु॥
बिन्दु कहे ह्रीकार का, आदिम कहे अकार।
विष्णु कहे ब्रह्मा कहे, शिव शिव का अवतार॥

सावन की रिमझिम कहे, कहे तीज त्योहार ।
अथवा कहे वसन्त की, आई नई बहार ।।

वनमाला की गोद में, पुत्र नही ससार ।
सार सार ससार का, सुत में लिया निहार ।।

पलना मां के प्रेम का, पितृ-प्रेम की डोर ।
झूल रहा शिशु शांतमन, नही लगाता जोर ।।

सोता शिशु रोता नही, माता होती पास ।
शिशु मन माता के सिवा, कम करता विश्वास ।।

शिशु के कोमल अग पर, मां के कोमल हाथ ।
कोमलता से हो रही, कोमलता की बात ।।

शिशु उत्तर देता नही, सुनता सारी बात ।
मौन विना क्या प्रेम का, हुआ कभी साक्षात् ।।

शिशु की सेवा के लिए, रहते सभी सतर्क ।
सहँस करो से क्या नही, सेवा करता अर्क ।।

मां की ममता खेलती, नही खेलता बाल ।
पहले प्रभु अब मां स्वय, रखती सब सभाल ।।

हँसे विना हँसना कभी, रोना अपने आप ।
सोए सोए देखना, इधर उधर चुपचाप ।।

नही किसी भी काम की किसी व्यक्ति की लाज ।
चाहे शिशु के पास में, स्थित हो सभ्य समाज ।।

लगा दिया करता शिशु, मां के मुख पर लात ।
उसे न आता मानना, अभी किसी की बात ।।

आशा तृष्णा से अलग, निर्विकार निर्दोष ।
अपनी प्रतिकृति देखकर, प्रभु पाते सतोष ।।

सुख के दिन थोडे यथा, शैशव थोडे काल ।
ज्यों बढ़ता त्यो साथ में, बढ जाते जंजाल ।।

शिक्षण का स्वरूप

कलाचार्य के पास बैठकर, शिव ने शिक्षण प्राप्त किया ।
सह पाठी छात्रो से पहले, अपना कार्य समाप्त किया ।।

सहाध्यायियों से लडने का, राजकुमार न लेता नाम ।
पढ़ने का है काम जहां पर, नही वहां लडने का काम ।।

आज की शिक्षा

पाठ्य पुस्तकों वस्त्रों अंगो की, न स्वच्छता जो रखता ।
ऐसा बालक पढने से भी, पढने से पहले थकता ।।

अध्यापक के साथ विनय का, रखा न करता जो व्यवहार ।
बिना विनय के ज्ञान अधूरा, लिए उसी के बनता भार ।।

सदुपयोग शिक्षा का करता, सौ शिक्षा की शिक्षा एक ।
वह शिक्षा क्या शिक्षा है जो, सिखला पाती नही विवेक ।।

शिक्षित व्यक्ति अगर करता है, बुरे काम अथवा आलस्य ।
तो समझा जाता है निश्चित, है शिक्षा में दोष अवश्य ।।

गुरु के पास यही सीखा क्या, बकना गाली रखना क्लेश ।
घर पर आये हुए व्यक्ति से, इसी तरह क्या आना पेश ।।

नही स्वय का ज्ञान भान जो क्या सीखा 'सामाजिक-ज्ञान" ।
उससे कही नही श्रेयस्कर, कभी कभी अपना अज्ञान ।।

पढकर भी इतिहास आपमे, जगा आत्म-विश्वास नही ।
उस दीपक को दीप कहें क्या, जिसके पास प्रकाश नही ।।

पास-पडौसी के क्षेत्रो का, अधिकारो का जिसे न भाव ।
पढ भूगोल खगोल किया है उसने शिक्षा का अपमान ।।

ऐसा करने कहने का फल, क्या होगा जो पता नही ।
रेखा गणित, गणित उसको, क्या इतना पाये बता नही ।।

अपनी भाषा के स्वर-दुस्वर जो आए जो लिखे कहे।
शिक्षा पढ़ने वाले बाबू, क्या वे कोरे नही रहे ॥
शिक्षा जीने के साधन दे, सुख दे प्रेम शांति के साथ।
और साथ दे परभव तक जो, उस शिक्षा में डाले हाथ ॥
जो शिक्षा बेकार बनाए, है वह शिक्षा ही बेकार।
शिक्षा पद्धति बदली जाए, सोच रही है अब सरकार ॥

शिव का विवाह

रूप अनन्या नृपकन्या से शिव का पाणिग्रहण संस्कार।
योग्य वधू वर योग्य योग्य से, मिला योग्य का योग प्रकार ॥
अंग रग की एकरूपता, अंतरंग को करती एक।
वर को वधू वधू को वर जब, राग दृष्टि से लेते देख ॥
शय्या के सुमनस रगो की, अगो पर पडती छाया।
रंग बिरगी बन जाती थी, वधू और वर की काया ॥
सुमनस वाले पति पत्नी को, खिले हुए सुमनस भाते।
बहुत खिन्न हो जाते खुद को, भिन्न रूप में जब पाते ॥
पति पत्नी है, पत्नी पति है पत्नी नही, नही पति देख।
है भी और नही कुछ भी वे, भरा इसी मे एक विवेक ॥
लगी सास को लक्ष्मीरूपा, बहुत लाडली वधू नई।
आज्ञा बिना महल के बाहर-भीतर भी जो नही गई ॥
प्रातः साय सास-ससुर के पद मे करती पुण्य-प्रणाम।
आशीर्वाद बडों का लेना, माना जाता उत्तम काम ॥
ऊपरवाले नीचेवाले, घरवाले खुश खुश सारे।
प्यारा वही सभी को लगता जिसको लगते सब प्यारे ॥
नही डाँटना नही डपटना, नही किसी पर रखना रोष।
दोष किसी का होने पर भी, कुछ कुछ कर लेना संतोप ॥

काम काम से काम सभी से, रहता है जीवन पर्यन्त ।
लेना देना काम प्रेम से, करना नही प्रेम का अन्त ।।
काम नही मुझको कोई से, कहने का कुछ काम नही ।
बिना किसी के बिना काम के, चला कभी भी काम नही ।।
लेना काम बडा मुश्किल है, देना काम बडा मुश्किल ।
ले दे सकता काम उसी का, जीवन होता नही जटिल ।।
घर का सुख, घरवाली का सुख, मात-पिता का सुख पाया ।
माया का सुख सुख काया का, पूर्व पुण्य सम्मुख आया ।।
वर्षा का सुख गर्मी का सुख, सुख सरदी का माना है ।
प्रकृति के अनुकूल स्वय को, सुख के लिए बनाना है ।।
लिए हमारे नही एक के, सब के लिए खुला आकाश ।
सभी सुखी हो रोग रहित हो, सुखपूर्वक ले श्वासोच्छ्वास ।।
एक अमीर गरीब एक हो, पर जीवन में भेद नही ।
पुरुषो, स्त्रियो, नपुंसको मे, अपना अपना वेद नही ।।
सवेदन समकक्ष सभी जन, करते रहते है मन से ।
कैसे उसे बडा माने जो, बडा हो रहा हो धन से ।।
छोटा माना जो ओरो को, आयेगा अभिमान न क्या ।
बड़े आप से अन्य बहुत है, आया इसका ध्यान न क्या ?।।

जाति-स्मरण का कारण

बैठा राजमहल की छत पर, पथ पर अपनी नजर पसार ।
दिया दिखाई आता कोई, झोली पात्र लिए अणगार ।।

दोहे

मुख पर थी मुखवस्त्रिका, तन पर उज्वल वेष ।
शोभित होते शीश पर, लघु लघु काले केश ।।
पांवो मे जूता नही, थे झोली मे पात्र ।
मलिन नही उजला नही, तप:पूत शुभ गात्र ।।

इधर उधर न नजर थी, नजर जमी की ओर ।
जोर जमी पर दे नही, मानो है कमजोर ॥

गति से त्वरता शिथिलता, दूर गयी थी भाग ।
जिस दिन से मुनि ने लिया, त्याग और वैराग ॥

वाणी मे से कटुकता, स्पष्ट हो गई नष्ट ।
मिष्ट बोलने में नही, अनुभवते कुछ कष्ट ॥

जो भी मुनि को देखता, उसका झुकता शीश ।
मानो मुनि से माँगता, मन ही मन आशीश ॥

जो जन आता सामने, उसके जुड़ते हाथ ।
मिले हुए है हम कही, मानो मुनि के साथ ॥

शिव ने देखा शांति से, मुनि का ऐसा चित्र ।
उतरा नीचे महल से, करने जन्म पवित्र ॥

परम तपस्वी सन्त को, झुक कर किया प्रणाम ।
मुनिजी ! ले इस स्थान पर, आप जरा विश्राम ॥

लगता बहुत सुहावना, मुझे साधु का वेष ।
दिया न जाये क्यो नही, यही धर्म उपदेश ॥

मुनि बैठे आसन लगा, देने को उपदेश ।
उपदेशो का क्या कभी, होता समय विशेष ॥

धर्म उपदेश

मुनि बोले मानव भव पाकर, दया धर्म पर ध्यान करो ।
उत्तम पात्र स्थान मिल जाए, यथाशक्ति शुभ दान करो ॥
मात-पिता का और बडों का, विनय करो सम्मान करो ।
किसी ठोठ भट्टारक का भी, कभी नही अपमान करो ॥
पाये हुए विभव यौवन का, कभी नही अभिमान करो ।
परभव जाते समय पूर्णत:, शांति सहित प्रस्थान करो ॥

सामायिक से प्रतिक्रमण से, प्रातः साय स्नान करो ।
अपने गुण का अपने मुख से, कही नही व्याख्यान करो ॥
विषय विकारो के सेवन का, कभी नही विषपान करो ।
अपने और परायेपन की, पूर्णतया पहचान करो ॥
क्या लाए क्या ले जाना है, चिन्तन सत्य-प्रधान करो ।
जो मेरा वह नही किसी का, इसका अनुसंधान करो ॥
इस नरभव का उस परभव का साथ-साथ कल्यान करो ।
प्रभु का प्रभु के उपदेशो का, पान करो गुण-गान करो ॥
अपने साथी मित्रों का भी, प्रेम पूर्ण आह्वान करो ।
लिए देश के लिए धर्म को, अपने को बलिदान करो ॥
कल कैसा आनेवाला है, इसका कुछ अनुमान करो ।
दुर्व्यसनो के भोग्य नही हो, बहुत योग्य सतान करो ॥
प्राणिमात्र है मित्र अगर, क्यो औरो को हैरान करो ।
मानवता के सिद्धान्तो पर मन को आस्थावान करो ॥
किया और करना है जो भी, उस पर लाल निशान करो ।
अपने लिए भला करके, क्यो औरो पर अहसान करो ॥
जिसको गुरुपद देना उसके, गुण-अवगुण की छान करो ।
महलो मे क्या ? गुरु-चरणों मे, लिए स्वयं के स्थान करो ॥
मणि रत्नो का कंचन का क्या ? गुण का नया निधान करो ।
मन मे क्या-क्या रोग भरे है, इसका सही निदान करो ॥
सेवा करने वाले को भी अपने तुल्य महान करो ।
जिससे प्रेम निभाना उससे, कभी न खीचातान करो ॥
होती जहाँ किसी की चुगली, उसकी ओर न कान करो ।
पक्ष-विपक्ष किसी का लेकर, कोई नही बयान करो ॥
अरिहतो के निर्ग्रन्थो के प्रति आस्था बलवान करो ।
अपने को इन्सान करो, इस आत्मा को भगवान करो ॥

मानवता से ऊपर

मानवता के सभी रूप ये, रूप धर्म के माने है ।
पहले यह बतलाये जाते, जो जाने पहचाने है ॥
पांच महाव्रत पांच समितियां, तीन-गुप्तियां तेरह बोल ।
तेरह बोलों का परिपालन द्वार मोक्ष के देता खोल ॥
घर में रहकर देश विरति का, आराधन करते जन-जन ।
सम्यग्दर्शन वालो का भी पावन बन जाता जीवन ॥
मिथ्यात्वी भी नियम व्रतों का, कर लेते जो आराधन ।
उनको भी वे अमर लोक के, मिल जाते है सुख-साधन ॥
करता जो न स्वयं, करवाता धर्म पुण्य के काम भले ।
करण दूसरे से उसका भी, धर्म पुण्य का भाग फले ॥
करता नही, नही करवाता, केवल अनुमोदन करता ।
इतना सा करने वाला भी, भीमभवाम्बुधि से तरता ॥
जन्म-जन्म के संस्कारो के, फलने से फलता है धर्म ।
सत्य धर्म फल जाने से ही, चिकने बंधते कभी न कर्म ॥
जैसी जिसकी रही भावना, उसने उतना स्वीकारा ।
हुआ प्रस्तावित और प्रचारित, श्री केवलियो के द्वारा ॥

शिव की प्रशंसा

राजकुमार! युवक होकर भी, बडी धर्म की रुचि रखते ।
इतनी देर हो गई फिर भी, सुनकर धर्म नही थकते ॥
विनयवान हो दयावान हो, सरल भावना वाले हो ।
पितृपक्ष के मातृपक्ष के उजियाले रखवाले हो ॥
भद्र प्रकृति वाले हो उन्नति-वाले मतिवाले हो ।
गतिवाले हो नतिवाले हो, दिखने मे रतिवाले हो ॥

जाति स्मरण

सुन उपदेश प्रशसा सुनकर, गद्गद् राजकुमार हुआ ।
जातिस्मरण हो गया वही पर मन आश्चर्य अपार हुआ ।।

दोहे

मै भी पिछले जन्म में, था ऐसा ही सत ।
अत. सत मुझको लगे, सुहावने अत्यन्त ।।
विधि से वन्दन कर उठा, आया माँ के पास ।
माँ ने देखा आज शिव, कैसे बना उदास ।।
आये इतने में वहाँ, राजाजी भी आप ।
रहा गया शिव से नही, अब बिल्कुल चुपचाप ।।
कृपया अनुमति दो मुझे, लेना संयम भार ।
लगता है खारा जहर, यह सारा संसार ।।

पिता और पुत्र

कहा पिता ने पुत्र क्यो, बनने जाते सत ।
क्यो न तुम्हें प्रिय है कहो, दुनिया का यह पंथ ।।
पूर्व-जन्म कृत पुण्य से, हुए भोग ये प्राप्त ।
भोग कर्म भोगे बिना, होगे नही समाप्त ।।
भोग चुको जब भोग तुम, तब कर देना त्याग ।
उचित नही माना कही, यौवन मे वयराग ।।
विषय वासनाएँ बहुत, होती है बलवान ।
तेज हवाओं से न क्या, उड जाता जलयान ।।
श्रमणावस्था में अगर - किया काम ने जोर ।
आओगे मुड़कर यही, बन कर अति कमजोर ।।
अपयश होगा जगत मे, अधिक लगेगा पाप ।
मेरे कहने से प्रथम - सोच लीजिए साफ ।।
शिव बोला—आयुष्य का, क्या होता विश्वास ।
आता जाता एकदम, रुक जाता है साँस ।।

विषय वासनाएँ बहुत, बहुत काम का जोर ।
एक काल के सामने, सारा जग कमजोर ।।
तपःतेज के सामने - जल जाता है काम ।
जीने उठने का कभी - काम न लेता नाम ।।
लिए भोग के है नही, मानव की यह देह ।
मेरी दृढता पर नही, मुझे तनिक सदेह ।।
नही बुढ़ापे में किया - जाता घर का काम ।
नही बुढापे में लिया, जाता हर का नाम ।।
यौवन में होते सभी, इस दुनिया के काम ।
यौवन में ही क्यो नही—ले हम प्रभु का नाम ।।

मुनि जीवन के कष्ट

मुनि जोवन क्या सरल है ?, जिसमें कष्ट अनेक ।
परीषह बावीस की, आती गिनती एक ।।
भूमिशयन रूखा अशन, जीर्ण वसन अस्नान ।
वन निवसन निशि जागरण, जीवन मरण समान ।।
कब इच्छा हो कब मिले, कितना क्या दे लोग ।
बनना पडता साधु को, क्षुत् देवी का भोग ।।
सहिष्णुता के शस्त्र से, अरिजन का संहार ।
करना आता है मुझे, बोला राजकुमार ।।
क्या उनके तन-मन नही, साधु बने जो लोग ।
मैं क्या करने जा रहा, कोई नया प्रयोग ।।
वीर वचन का अनुगमन, करना मेरा काम ।
मुझे रोकने का न लो, पूज्य पिताजी ! नाम ।।
दिया पिताजी ने नही, प्रत्युत्तर इस बार ।
मां बोली बेटे ! सुनो, मेरे सही विचार ।।

क्या न हमारा आप पर होता कुछ अधिकार ।
कुछ अपने कर्त्तव्य का, आता नहीं विचार ।।
हां है तो जावो नही, छोड हमारा प्यार ।
घर पर रह कर ही करो, धर्म क्रिया सुखकार ।।
इतना कहकर के उठे, राजा रानी सद्य ।
पुष्कर मुनि सवाद के कितने सुन्दर पद्य ।।
शिव उठ आया महल में, किंकर्त्तव्यविमूढ ।
मोह जाल से छूटना, बनी पहेली गूढ ।।

एक नया उपाय

राजा रानी लगे सोचने, शिव ने जो हठ धार लिया ।
कल वह हो जायेगा, जिसका मन ने आज विचार किया ।।
समझाने से जो माने तो, उस मनाने में आनन्द ।
जोर जबरदस्ती करने से, घर में मचा रहेगा द्वन्द्व ।।
हम दोनों से यह न मानता, किसे बुलाया जाए अब ।
जो अपनी मति से शिव सुत को, शाँति सहित समझाये सब ।।
नगर सेठ जिनदास धर्म का, ज्ञाता व्याख्याता गुणवान ।
उसके समझाने से सुत का, परिवर्त्तित हो जाये ध्यान ।।

जिनदास के साथ

सूर्योदय होते ही नृप ने, बुलवाया आया जिनदास ।
वातावरण बताया, पाया, शिव का मन संपूर्ण उदास ।।
जोड़े हाथ बात से पहले, शिव ने तोडा अपना मौन ।
देखा आंखे खोल यहां पर, महलो मे आयो है कौन ।।
मुझे वन्दना क्यों करते हो, आप योग्य हो श्रावक हो ।
जैन जगत के नीति-धर्म के, निष्ठावान प्रभावक हो ।।
बोला सेठ आपके मन मे, अरुचि हुई है भोगो से ।
पूर्ण समर्थन इसी बात का, पाओगे हम लोगो से ।

द्रव्य क्षेत्र का काल भाव का, जब आ जाता है अवसर ।
तब संयम लेने से कोई, नही रोकता राजकंवर ।।

आप उदास उदास रहो तब घरवाले है सभी उदास ।
धर्मध्यान के लिए चाहिए, चतुर्मुखी बल वीर्योल्लास ।।

मात-पिता का चित्त दुखाने वाला—क्यो वरताव करे ।
जैसा चित्त चाहता उनका, वैसा क्यो न स्वभाव करे ।।

घर पर रह कर घर वालो से—कहकर करिये धर्म विशेष ।
जिससे किसी व्यक्ति के मन को, नही उपज सकता सक्लेश ।।

क्या श्रावक के व्रत कुछ कम है, शक्ति चाहिए करने की ।
आनंदादि श्रावको ने ही, विधि अपनाई तरने की ।।

भरत चक्रवर्ती ने जीवन अनासक्ति से जिया न क्या ?।
महलो में ही केवल पाया, भावो पर बल दिया न क्या ।।

छह खंडों पर आधिपत्य भी, करना था वह किया न क्या ।
इतने वर्षो तक सुखपूर्वक, सब कुछ खाया पिया न क्या ।।

श्रावक के व्रत अपनाओ अब, संयम की क्यो बात करे ।
छोडो आग्रह उठो प्रेम से, भोजन सब के साथ करे ।।

शिव का मोड़

सोच रहा शिव मन ही मन से, भोगावली कर्म है शेष ।
श्रावक श्री जिनदास दे रहे, श्रावक बनने का उपदेश ।।

संयमियो की समता करना, श्रावक की क्या क्षमता है ।
विनयी चतुर नमा करता है, ठूठ मूर्ख कब नमता है ।।

झुकना मुझे चाहिए रुकना, मुझे चाहिए मौके पर ।
भोजन करने से मतलब है, चढ क्या करना चौके पर ।।

एक जन्म के बाद मोक्ष के अधिकारी हम हो जाते ।
जो सो जाते मोह नीद मे, वे अपने को खो जाते ।।

शिव ने ऐसा सोच समझ कर, अपना आग्रह छोड़ दिया ।
अनशन मौन सहित जो धारा, उसे प्रेम से तोड़ दिया ॥

हर्ष ! हर्ष !!

श्रावक ने झुक कर लिया जाने का आदेश ।
कहा, समय जो भी लिया वह क्षतव्य विशेप ॥

आये मिलने के लिए समय समय पर आप ।
धन्य धन्य हो, आपने मिटा दिया सताप ।

राजा रानी के नही, रहा हर्ष का पार ।
संयम लेने से रुका, प्यारा राजकुमार ॥

मुनि का सान्निध्य

सागरदत्त संत का सारा पता लगाकर राजकुमार ।
आया उनके सम्मुख अपने रखने को जो रहे विचार ॥

बारह व्रत विधि सहित धारकर श्रावक-जीवन जीता है ।
तप में नही पारणे मे भी, कम खाता कम पीता है ॥

सामायिक करने से पहले, लेता मुख मे ग्रास नही ।
खाने पीने मौज उड़ाने पर—मन का विश्वास नही ॥

सायं प्रतिक्रमण करने पर, करते आगम का स्वाध्याय ।
नाथ नही अपने को माना - करते पूर्णतया असहाय ॥

निर्धारित द्रव्यो की परिमिति स्मृति से होती दूर नही ।
जो भी खाते कम खाते थे, खा लेते भरपूर नही ॥

जिस खाने से भोग वृद्धि फिर, रोग वृद्धि हो जाती हो ।
खाना ऐसा खाये जिससे, कार्य सिद्धि हो जाती हो ॥

हित मित वोल बोलते लेकिन खोला करते भाव नही ।
अमित अहित भापी का कोई, देखा गया प्रभाव नही ॥

कहीं न जाते कहीं न आते, सदा अकेले ही रहते ।
तेरे बिना नही जो लगता, ऐसा कभी नहीं कहते ।।
धर्म क्रिया के बाद प्रिया के साथ, बैठते शान्तमना ।
कहते लिया नही, लेना है, प्रिये मुझे तो साधुपना ।।
मेरी धर्म क्रियाओ मे सह-योग अपेक्षित तेरा है।
इक्षु यष्टियों को यन्त्रों के द्वारा जाता पेरा है ।।

परंपरा में भी नहीं

जुआ खेलते रहने से क्या, हुआ किसी का भी कल्यान ।
मद्यपान करते रहने से, हुआ न जीवन का उत्थान ।।
वन में रहो शिकार खेलते, पशुओ पर जो की न दया ।
परभव में क्या देखा उन पर, परमात्मा का ध्यान गया ।।
मांसाहार न छोडा जोडा, नाता परदाराओं से ।
उन्हे निकाला कैसे जाए, नरको की काराओं से ।।
जिसने भला किया उसका भी बुरा न करने से चूके ।
उनकी ऐसी निष्ठुरता पर, नर थूके खर भी थूके ।।
नही सत्य का आज जमाना, कहकर जो करते चोरी ।
कैसे नही कटेगी उनकी, कही बीच मे से डोरी ।।
इस कर देना उस कर लेना, चाहे कलियुग क्यों न बड़ा ।
अपराधो के लिए हमेशा, भरना पड़ता दण्ड कडा ।।
प्राण लूटने वाले का मन, माल लूटते क्या डरता ।
अपना नही भला करता वह, औरो का भी क्या करता ।।
शिव ने राजघराने से ये, बाते देखी सुनी नही ।
सुनी अगर कानो से तो भी, उत्तम गिनकर चुनी नही ।।
करने वाले करते होगे, हमे नही करना ऐसा ।
मरने वालो के पीछे बस, जान बूझ मरना कैसा ?।।

परंपरा से घर से माता-और पिता से जो पाया ।
उसकी ही शिव के तन मन पर, पड़ी हुई निर्मल छाया ॥
आयंबिल उपवास छट्ठ तप अट्ठम दशम किया करता ।
अट्ठाई की उग्र तपस्या करने को भी कम डरता ॥
स्थिरता लाने को करता था, ध्यान योग का सतताभ्यास ।
किसी प्रक्रिया का होता है, युगानुसारी ह्रास-विकास ॥
गृह में गृहत्यागी सम जीवन, जीने वाला राजकुमार ।
घर में है या घर से बाहर, स्पष्ट करे क्यो नही विचार ॥

अंत समय पर

विकट समय सन्निकट आ गया, प्रगट जानने में आया ।
प्राण निकल जाने के लक्षण, बतला ही देती काया ॥
जिसने जन्म सुधारा अपना, मरना वही सुधारेगा ।
हँसता हुआ मृत्यु के क्षण को, हर्ष सहित स्वीकारेगा ॥
"इस धन का क्या होगा" ऐसा, मन में नही विचारेगा ।
वैद्य बुलाओ मुझे बचाओ, ऐसे नही पुकारेगा ॥
मेरे पीछे ऐसे करना, वचन नही उच्चारेगा ।
यह आया वह अभी न आया, किस किसको सभारेगा ॥
मोह कर्म का बोझा ढोया, सिर से स्वयं उतारेगा ।
व्रत में लगे हुए दोषो का, प्रायश्चित हंकारेगा ॥
सबसे क्षमायाचना करता, परभव आप पधारेगा ।
इच्छापूर्वक अपने बल से, दोनों पाव पसारेगा ॥
परभव मे यह पाऊँ ऐसी, आशाओ को मारेगा ।
मरण दूसरा कभी नही हो, ऐसे भाव निखारेगा ॥
जन्म मरण से मरण जन्म से, इस विधि को धिक्कारेगा ।
घर वाले रोएँ तो रोएँ, वह क्यो आसू झारेगा ॥

मात पिता, सुत प्रिय पत्नी पर, नेत्र नही विस्फारेगा ।
मेरा कोई नही यहां पर, आंखे नही उघारेगा ।।
नावा डूब नही जाये बस, भंवर जाल को टारेगा ।
आये हुए साथियो को भी, सुख से पार उतारेगा ।।
मरने से डरने वाले को, मरना होता डर-डर कर ।
ऐसे लोग मरा करते है, अपना घर विस्तर भर कर ।।
शिव की अतिम यात्रा कितनी, सफल रही देखो भाई ।
विद्युन्माली देव बना यह, माला अभी न मुरझाई ।।
महावीर-प्रभु ने समझाया, समझ गया श्रेणिक नरवर ।
पूर्वजन्म की बातो का कुछ, होता अद्भुत अधिक असर ।।

देव का भविष्य

सात दिनो के बाद देव यह, ऋषभदत्त का नंदन बन ।
श्री जम्बू कहलायेगा फिर, शोभायेगा जिनशासन ।।
तीर्थंकर जिन त्रिकालदर्शी—बतला देते भूत-भविष्य ।
साधारण नेत्रांजन से भी, दिखने लगते निधि अदृश्य ।।
श्रेणिक हर्ष मनाता प्रभु की, चरण वन्दना करता है ।
धन्य धन्य पुर राजगृही का, उज्ज्वल चित्र उतरता है ।।
श्रेणिक गया गए सुर सुरपति, पशु-पक्षी भी गए सभी ।
परिसमाप्ति हो जाने पर जन - नही उपस्थित रहे कभी ।
अन्य देशनाओ से कुछ कुछ, भिन्न देशना आज रही ।
करे प्रशसा जिन प्रवचन की, अपनी अटल रिवाज रही ।।

मीठे भोजन की यथा, आती मीठी याद ।
आता प्रवचन श्रवण का, मधुर मधुरतम स्वाद ।।

स्तंभ की पूर्णता

रचना स्तंभ तृतीय की, की पुष्कर ने भव्य ।
महावीर की देशना, पावन पांचो गव्य ।।

प्रगट हुआ पाया गया, श्रेणिक का विश्वास ।
तमस् उसे कैसे कहें, जो है पूर्ण प्रकाश ॥
पवित्रता अपवित्रता, लेती ज्यो आकार ।
लेती जंबू जीवनी—क्यों न चढाव उतार ॥
पवित्रता के पक्ष का, पुष्कर करे प्रचार ।
जवूर्जा की जीवनी, सम्मुख रखे उतार ॥

विना सिंधु मे मिले कही भी, सरिताओ को स्थान नही ।
विना त्याग के किसी व्यक्ति के जीवन का उत्थान नही ॥
बिना सुगुरु की सेवाओ के, बनता शिष्य महान नही ।
बिना पुद्गलों के कोई भी, वन पाता संस्थान नहीं ॥
विना पढ़े पुष्कर कोई भी, बन पाता विद्वान नही ।
रस देने वाली रचनाएँ, करना भी आसान नही ॥
काव्य पान के सम्मुख टिकता, कोई अमृत-पान नही ।
सरस्वती के सेवन जैसा, कोई एक निधान नही ॥

जंबू स्वामी का चरित - है अपने में एक ।
पुष्कर कर विश्वास कुछ - पन्ने पढ़ कर देख ॥
स्तंभ सुदृढ़ता पर सदा, स्थिर रहता आवास ।
दृढ़ता पर अति दृढ़ बना, पुष्कर का विश्वास ॥
पुष्कर का विश्वास ही, ले रचना का रूप ।
प्रस्तुत करता त्याग का, वह प्राचीन स्वरूप ॥

●

चतुर्थ स्तम्भ

मंगलाचरण

दोहे

गौतम ! गणधर दीजिए, अनुपम अक्षर-लब्धि ।
जिससे मंथन कर सकू, मै आगम-ज्ञानाब्धि ।।
गौतम गणधर ! ज्ञान का, दो वह अक्षय-पात्र ।
जिसे बाँटता मैं चलू, जो भी आये छात्र ।।
गौतम गणधर ! दीजिए, वह जिज्ञासा-बुद्धि ।
जिससे कर हर प्रश्न मैं, करलू संशय-शुद्धि ।।
गौतम गणधर ! दीजिए, वह सेवा, वह भक्ति ।
पाती सेवा-भक्ति से, शक्ति स्वत: अभिव्यक्ति ।।
गौतम गणधर ! दीजिए, चिन्तन परम विशुद्ध ।
मोहराज से जीत लू, क्षण भर में गृह-युद्ध ।।
आगम में गूथा गया, गौतम गुरु का ज्ञान ।
गुरु गौतम के नाम में, 'पुष्कर' शक्ति महान ।।
जंबू जीवन की लिखू, वर्तमान की बात ।
भूत भविष्यत की कथा, नही व्यक्ति के हाथ ।।
सभी लेखको के लिए, कथा रही है एक ।
लेकिन पुष्कर बरतते, अपना अलग विवेक ।।
मति साचे मे ढालना, देना नव्याकार ।
इससे बढकर और क्या, करता रचनाकार ।।

जंबू के पिता

राधेश्याम

राजगृह नगरी के वासी, ऋषभदत्त थे सेठ महान।
सेठ सभी क्या हो सकते है, केवल होने से धनवान॥
न्याय-नीति से अर्थोपार्जन-करने वाले संतोषी।
दोषी समय न दोषी जनता, साथ नही सत्ता दोषी॥
नही नशीले द्रव्यो का वे, करते थे उपयोग कभी।
बडे भले है धर्मात्मा है, बतलाते थे लोग सभी॥

ऐसे सेठ नही थे

ऐसे सेठ नही थे जिससे, सेठ नाम बदनाम बने।
और किसी का बने न चाहे, पहले अपना काम बने॥
धोखा-जाल-कपट-छल करना, कहना कुछ-कुछ कर लेना।
क्यों न गरीब कही मर जाये, बस अपना घर भर लेना॥
नही किसी के दु.ख सुनने के, लिए सेठ के कान खुले।
नही किसी के लिए बडा वह, खाली पडा मकान खुले॥
गोदामो मे पडा पडा सड-जाये चाहे धान भले।
सेठ चाहते नही किसी का, अधभूखा परिवार पले॥
रुको नही विश्राम नही लो, चलो थको तो भले थको।
सम्मुख नही सेठ के पीछे, नौकर चाहे क्यो न बको॥
सबसे पीछे सोओ सबसे, पहले उठो करो घर काम।
करने देते कभी न क्षणभर, कर्मचारियो को विश्राम॥
रोगी, नौकर का भी वेतन, काट लिया करते कर से।
क्या न नौकरी तुझे चाहिए, डांट पिलाते ऊपर से॥
सहानुभूति नही दिखलाते, किसी व्यक्ति के साथ कभी।
कहते तो ऐसे हीं कहते, तेरी भी है बात कभी॥

धन का नशा नशा, यौवन का, खुलने देता आंख नही ।
इतना भला हुआ उडने के, लिए लगी दो पांख नही ।।
टेढी चाल बात भी टेढी, टेढी पगडी कसी हुई ।
स्वार्थ-सिद्धि की सभी आंटिया सेठाई में बसी हुई ।।
एकवार जो फसा जाल में, उसे निकलने क्या देते ।
अपनी दयालुता का उससे, हस्ताक्षर कटवा लेते ।।
अपने को ईश्वर से ऊँचा, सिद्ध किया करते हरदम ।
तन से, धन से, मन से करते, अपने को भारी-भरकम ।।

जम्बू की मां

नाग धारिणी प्रियकारिणी, अहितवारिणी सेठानी ।
रूप-शील-गुण-लक्षण उज्ज्वल, उज्ज्वल मोती का पानी ।।
मर्यादा में रहना वहना, सहना, कहना पति के साथ ।
अच्छी तरह धुला करते है, धोये अगर मिलाकर हाथ ।।
सुन्दरता को कही न खोया, श्रम सह लाई पीहर से ।
लादा करती नही देह को, प्राप्त हुए जर-जेवर से ।।
जो आशा ले आया उसको, खाली हाथ नही मोड़ा ।
लेने वाले ने न कहा बस, मुझे दिया इतना थोडा ।।
बात समझने समझाने में, बडी कुशलता दिखलाती ।
आखे दिखलाती न किसी को, मंत्र शांति का सिखलाती ।।
सिखलाती जो स्वयं जानती, नही छुपाती ज्ञान नया ।
कहती सिखलो देने से क्या, मेरा कुछ भी चला गया ।।
भला स्वयं का भला अन्य का, होने वाला करती काम ।
सत्कृत्यो की परम्परा के, परख चुकी पावन परिणाम ।।
देती समय, साथ भी देती, रहती नही अकेली आप ।
छोड़ा करती क्षणिक मिलन में, मिलनसारिता की मृदु छाप ।।

कौन करेगा अभी चलो फिर, इसे बाद में कर लूंगी ।
अभी यही पर धर दूं क्या है, फिर अन्दर में धर दूंगी ॥
ऐसा करने वाली वनिता उठा लिया करती नुक्सान ।
इससे वस्तु-समय-धन के सह, क्या न ज्ञान का है अपमान ? ॥
आते बडे विनय ले जाते, छोटे ले जाते वात्सल्य ।
श्रम ने और समय ने माना, आने जाने को साफल्य ॥
अल्पज्ञानियों और अशक्तो का, न किया करती उपहास ।
शिक्षा देती सेवा करती, पास अगर होता अवकाश ॥
खाती अधिक न अधिक न पीती, सोती अधिक नही चलती ।
अधिक फैशनेबुल बनने की, करती कभी नही गलती ॥
अधिक बोलती नही किसी से, अधिक न करती हास्य-विनोद ।
विदुषी बहनो को होता है, स्थान-समय-मात्रा का बोध ॥

मात्र एक दुःख

सुख था सब कुछ दुःख एक था, नही एक संतान हुई ।
मन कहता क्यो अब तक मुझ पर, प्रकृति करुणावान हुई ॥
रोगाक्रान्त नही पति-पत्नी, फिर भी जो सतान नही ।
हमे यही कहना होगा बस, विधि अपना बलवान नही ॥
विविध कल्पनाओ में डूबी, डूबी हुई लगी रोने ।
मुरझी हुई हुई सूखी सी, कलिका सदृश लगी होने ॥
पुत्र नही पुत्री भी होगी, तो भी आंगन भर जाता ।
शिशुओ के रोने हसने का, स्वर घर से बाहर जाता ॥
स्तन्य पिलाती नहलाती मैं गाती लोरी प्रेम भरी ।
जाती कही साथ ले जाती, बहलाती मन घरी-घरी ॥

शून्यमनस्कता

इतने ही मे सेठ आगये, नही धारिणी हुई खडी ।
मानो प्रियतम के आने की, किंचित खबर न उसे पड़ी ॥

सोच रहा प्रिय आज प्रिया ने, क्रिया न की सत्कृतिवाली ।
नही हिलाई नही मिलाई, नजर नही मुख पर डाली ।।
क्या मेरे से रुष्ट हो गई, असंतुष्ट हो गई भला ।
स्त्री को तुष्ट बनाने वाली, रही न मेरे पास कला ।।
मधुर स्वरो से बोला, बोलो ! कैसे आज उदास हुई ।
या मेरे से कुछ पाने की, उपजी उर अभिलाष नई ।।
सुनकर अपने को संभाला, खड़ी हुई आदर के साथ ।
बिठला लिया सेठ को अपने-पास खीचकर कर से हाथ ।।

चिन्ता का विषय

अन्य स्त्रियों की गोदी में जब, मैं देखा करती हूँ बाल ।
छिपी हुई मन की ममताएे, ले लेती वे एक उबाल ।।
परम्परा से प्यार मिला जो, किसको बांटू प्यार-दुलार ।
किसे देखकर किसे सौपकर, हल्का करू हृदय का भार ।।
वह क्या द्राक्षाबेल बताओ, जो दे पाती द्राख नही ।
कल्पवृक्ष की क्या शोभा है, जिसकी कोई साख नही ।।
उस फल को क्या फल बतलाये, फल के लिए न जो दे बीज ।
जो न प्रभाव दिखा पाता हो, खोल फैंकते वह ताबीज ।।
ज्योति अखड जला करती है, लौ के लौ उपजाने से ।
समझ गए हो मनोभावना, होगा क्या चुप खाने से ।।

वैभार की सैर

बोला सेठ सही है कहना, किए जायंगे सभी उपाय ।
किन्तु कर्म के सम्मुख हम सब, पूर्णतया है ही असहाय ।।
चलो चले वैभार शिखर पर, घूम घुमाकर आयेगे ।
बैठ प्रकृति की गोदी में हम, मन अपना बहलायेगे ।।
समय बदलना, विषय बदलना काम बदलना है आराम ।
वास्तव में आराम काम है केवल भिन्न रहेगा नाम ।।

मिटी न मन की उदासीनता, चली घूमने पति के साथ ।
बाहर जाकर की जाती है, खुल करके दिल की दो बात ।।
चला किधर से आता कोई, और उधर से भी कोई ।
भले किधर से कोई आये, है वैभार शिखर वो ही ।।
कोई ऊपर कोई नीचे और बीच में है कोई ।
क्यों न कही पर कोई स्थित हो, है वैभार शिखर वो ही ।।
रूप किसी का, वेष किसी का रंग किसी का भा जाये ।
उसके लिए चाहता मन यो क्यो न इधर ये आ जाये ।।
कोई बैठा कोई लेटा, बेटा कोई कोई बाप ।
कोई पुण्य कमाने आया, आया कोई कमाने पाप ।।
झर झर झरनो की आवाजे, कहती कर कर जो करना ।
ऊचे से नीचे गिरकर भी, स्तर न गिरा देता झरना ।।
रंग-विरंगे विहगमो की, लीलाओ का पार नही ।
विहंगमो के विना हमारा, क्या सूना संसार नही ।।
गिरि सरि हरि करि तरि को, देखो विस्तृत करो स्वयं का ज्ञान ।
मानव जीवन मे ही सुख है, भूल न ऐसा लेना मान ।।
पुष्प और फल देने वाली, वल्लरियो को गर्व बडा ।
योगदान देने से बढकर, है क्या कोई पर्व बड़ा ।।
ऊँचे बढकर फल कर तरुवर, फल देते देते छाया ।
वढने का फल कुछ देना है, मुनि पुष्कर ने समझाया ।।
जडियाँ और बूंटियाँ कहती, आओ हमको ले जाओ ।
पहचानो गुणधर्म उगाओ, रोग मिटाओ सुख पाओ ।।
शुद्ध वायु सेवन करने से, प्रसन्नता होती है प्राप्त ।
रोग असाधारण हो जाते, शुद्ध हवा से स्वत: समाप्त ।।
स्थान-वायु-जल का जीवन से, कितना है संबंध घनिष्ट ।
तीनो जो अनुकूल न हो तो, हो जाते अनुकूल अनिष्ट ।।

अनतता निर्मलता देखो, नीलगगन की मन भरकर ।
हमें बुलाता पास स्वयं के, कहता और उठो ऊपर ॥
उजली हँस पंक्तियाँ देखो, जल क्रीडा में मग्न हुई ।
जल क्रीडाएँ देख धारिणी, पति से कुछ सलग्न हुई ॥
मोती नही, मछलियां केवल, बगुलो के मुख मे आती ।
वचते रहना धूर्त्त जनो से, वे तड़फडती कह जाती ॥

यशोमित्र के साथ

सिद्धपुत्र श्री यशोमित्र का, दर्शन मिलन पवित्र हुआ ।
आप कहा से ? आप कहा से ? यह संयोग विचित्र हुआ ॥
बहुत दिनो से मिले ? कहां थे ? कहो सुनाओ हो तो ठीक ?
कुशल प्रश्न-वांछन ही होता, शुद्ध प्रेम का शुद्ध प्रतीक ॥
आये यहां सुधर्मास्वामी, दर्शनार्थ मुझको जाना ।
यशोमित्र ने कहा—"चलू मैं", चलो हमें भी है आना ॥
तीनों चले वहां से आये, पास सुधर्मा स्वामी के ।
दर्शन दुर्लभ माने जाते, ऋषि मुनि अतर्यामी के ॥
वन्दन किया सुना शुभ प्रवचन, चली धर्म चर्चा उत्तम ।
उत्तम समाधान पाने से, मिट जाता है मन का भ्रम ॥
यशोमित्र कृतकृत्य हो गया, पाकर के समुचित उत्तर ।
जम्बू तरु से सबधित थे, इसके प्रश्न सभी लघुतर ॥
पुत्र-प्राप्ति के लिए प्रश्न अब, लगी पूछने सेठानी ।
विनयभाव से बोली भगवन् !, आप बड़े ही हो ज्ञानी ॥
होगा या होगा न बतादो, होगा तो वह क्या होगा ।
बालक-सती-सुगुरु की वाणी, गई आज तक क्या मोघा ॥
यह तो मै ही बतला दूगा, यशोमित्र यो बोला है ।
मुनियो के सम्मुख क्यो अपना, दुख भरा दिल खोला है ॥

सतों से सावद्य प्रश्न क्या, कभी किया जाता ऐसे ।
तुम सम विदुषी महिलाओ को, समझाया जाये कैसे ।।

यशोमित्र की बात

होगा निकट भविष्य में, पुत्र रत्न उत्पन्न ।
भूत भविष्य रहा नही, मेरे से प्रच्छन्न ।।
सेवा जम्बू देव की, करना धरना ध्यान ।
आयविल का साथ मे, रखना पूर्ण प्रमान ।।
फल जायेगी भावना, करो न चिन्ता शोक ।
चिन्ता से कब सुधरते, लोक और परलोक ।।
काम हो गया सहज में, चिन्तन बना प्रशस्त ।
काम पूर्ण कर सूर्य भी, सुख से होता अस्त ।।
गये वन्दना कर सभी, अपने अपने स्थान ।
सिद्धपुत्र का भाव से, किया गया सम्मान ।।
सदा अनागत के लिए, जन मन आशावान ।
आशा ही है अमरधन, आशा हो है प्रान ।।
आशा पर जीता जगत, होता नही निराश ।
जोने वाले के लिए, बने हुए हैं सांस ।।

फल के निकट

अब सेठानी श्रद्धा से नित देवाराधन करती है ।
आयविल तप आचरती है, नाम इष्ट का स्मरती है ।।
आशा फल जाने की आशा, आत्मा को रखती सतुष्ट ।
माँत्रिक-यांत्रिक-तांत्रिक विधियां, श्रद्धा विधि को करती पुष्ट ।।
जम्बू वृक्ष स्वप्न मे देखा जगी, नही सोई है फिर ।
माला जपने बैठ गई है, तन मन वचन बनाकर स्थिर ।।
सूर्योदय होते ही पति के, पावन पद मे किया प्रणाम ।
पूज्य जनो को प्रणमन करना, माना जाता पहला काम ।।

मुझे आज सपना आया है, सुन्दर जम्बू तरुवर का ।
तत्पश्चात् शांति से मैंने, नाम जपा श्री जिनवर का ।।
सुनकर ऋषभदत्त यो बोले, भाग्यवती तुम हो भारी ।
सपने द्वारा आज बने हम, मातृ-पितृ-पद अधिकारी ।।
बहुत बडी अभिलाषा मन की, पूरी होने को आई ।
नही समाई खुशी हृदय मे, नही वचन में बध पाई ।।

गर्भ का एक प्रभाव

गर्भ भाग्यशाली होने से, माता पाती कष्ट नही ।
कष्ट न पाता गर्भ शास्त्र का, कथन कही अस्पष्ट नही ।।
पापी जीव गर्भ में होता माँ पाती आराम नही ।
सिवा रोग आलस्य दु:ख के, रहता कोई काम नहीं ।।
स्वास्थ्य हानि धन हानि प्रेम की, हानि हानिवाला व्यापार ।
गर्भ प्रभाव दिखाने से ही, विघटित बन जाता परिवार ।।

धारिणी की संस्थिति

हृदय शांति ने भरा कांति ने - भरा धारिणी का आनन ।
वासन्ती सुषमा से सूना, रहा नही नन्दन कानन ।।
गर्भावस्था में जो रुचिकर, होता है आहार-विहार ।
पूर्ण सुरक्षित रहने को वह, कर लेना पड़ता स्वीकार ।।
भाये भले न भाये इसका, कोई नही उपाय कही ।
कष्टदाय होने पर भी मन, कहता क्यों सुखदाय नही ।।
दानभावना, ज्ञानभावना, दयाभावना करती जोर ।
देकर पढकर अनुकपाकर, बन जाती अति हर्ष विभोर ।।
विदुषी महिलाओ से मिलकर, वार्ताएँ करती खुलकर ।
पय का स्वाद बढा देती है, मिश्री पूर्णतया घुलकर ।।
किसी सयानी स्त्री से लेती, परामर्श कुछ करने को ।
कभी नाम जपती अर्हं ह्रीं, भीति मानसिक हरने को ।।

कल्पित भय से कंपित होकर, कभी कांपने लग जाती ।
कभी भावना से भावी को, स्वयं भांपने लग जाती ।।
कभी सोचती अभी न ऐसे, बोलूं सोचूं क्यो सारा ।
जो होगा देखा जाएगा, सुख-दुख किस्मत के द्वारा ।।
जुटता कभी टूटता साहस, मन के वश की बात नही ।
सभी बंधाते हिम्मत लेकिन, बात किसी के हाथ नही ।।

शिशु का जन्म

हुए सवा नव मास पूर्ण अब, हुआ प्रतीक्षा का भी अंत ।
ग्रह नक्षत्र लग्न पुल वेला, सब उत्तम आये अत्यन्त ।।
शिशु ने जन्म लिया सुखपूर्वक, सब को आई सुख की सांस ।
यथा शांति से निकल गई हो, चुभी हथेली वाली फास ।।
मिली सूचना शीघ्र सेठ को, बटी बधाई घर-घर पर ।
मितंपची दानी हो जाता, आता जब ऐसा अवसर ।।
जिसने सुना कहा उसने ही, हर्ष आज है हर्ष बडा ।
पुत्र-प्राप्ति के लिए भाग्य से, करते हम सघर्ष बडा ।।
लाओ मुंह मीठा करवाओ, मित्रो का मडल बोला ।
आओ, कहकर ऋषभदत्त ने, नोटो का बंडल खोला ।।
सधवाएँ मिल गीत गा रही, बजा रही बढकर थाली ।
सुन-सुनकर आ रही जा रही, स्त्रियां स्नेह संचय वाली ।।
सुत का मुख दिखलाने को बस, कहती, खुश हो कहती देख ।
देख, कहा था हमने जो वह, मिला बराबर लगी न मेख ।।
देर हुई उसका क्या धोखा, जनमा सुत पुनवान बड़ा ।
वहुत वहुत छोटा लगता है, तेरा आज मकान बड़ा ।।

नामकरण

नामकरण स्वप्नानुसार ही, रखने का था रीति-रिवाज ।
जम्बूकुमर नाम से सुत के - कानो मे दे दी आवाज ।।

जिसका नाम नही वह रहता, रहता केवल उसका नाम ।
रूप रंग से नाम बड़ा है, नाम सदा आता है काम ।।
भले नाम से प्यार जगत मे, बुरे नाम से द्वेष बड़ा ।
क्या कोई गणितज्ञ कहेगा, नही भागफल, शेष बड़ा ।।
सुनने में प्रिय, उच्चारण मे, सरल समझने में मतिगम्य ।
प्रिय सुत का प्रिय नाम हमेशा, मात-पिता को लगता रम्य ।।

मां की गोद

मातृ स्नेह की महिमा कोई, लिखने का क्यो कष्ट करे ।
वर्णातीत वस्तु को लिखकर, शक्ति-समय क्यो नष्ट करे ।।
दुनियाभर के महापुरुष ही, पलते मां की गोदी में ।
मोक्ष बीज पलते है जैसे, आत्मा की सबोधी में ।।
पूर्व जन्म के संस्कारो को, जागृत कर देती माता ।
अन्य किसी को क्या आयेगा, जो कुछ माता को आता ।।

मातृ-लीला

लगा टकटकी देखा करती, शिशु जब भी सोया रहता ।
मां का मन दुनिया से हटकर, उस मे ही खोया रहता ।।
बहुत देर सो लेने पर वह, शिशु को स्वयं जगा लेती ।
थोडा सा रोते ही लेकर, निज उर से लिपटा लेती ।।
हँसता नही अगर शिशु माता, हँस-हँस उसे हँसा देती ।
दूर खिसक जाने पर कसकर, अपने बीच धँसा लेती ।।
बाते कहती शिशु से ऊंची, मानो अभी पढा देगी ।
अगुली पकड उठाती ऊँचा, मानो अभी बढा देगी ।।
क्यो सोया है ? जा, उठ, तेरी, करले सारी तैयारी ।
मेरा बेटा बडा सयाना, नाम कमायेगा भारी ।।
अपने पूज्य पिताजी से तू, तेज निकलना ओ बेटे ।।
उठो उठो लो दूध पियो क्यो, आज अभी तक हो लेटे ।।

शिशु के अंगोपांगो का वह, करती भली भांति व्यायाम ।
कोमल अग सभी मुड़ जाते, मिलता तन मन को आराम ।।
घुंघराले बालो मे कघी, करने देता बाल नही ।
फिर भी माता सुत - सेवा को, कह सकती जजाल नही ।।
नहलाओ तो रोये कपड़े-पहनाओ तो भी रोये ।
उठकर जाओ तो भी रोये, रोये जो कह दो ओ-ये ।।
सुत के पिता बुलाते तो मां, कह देती शिशु रोता है ।
कैसे आवू आप बताओ, काम एक ही होता है ।।
सुनकर पिता स्वयं आ कहते, लाओ इसे मुझे दे दो ।
लिए लिए तुम थकी नही क्या ? जाओ नीद जरा ले लो ।।
आप सोइए कृपा कीजिए, मेरी चिन्ता करो नही ।
मैं सभाल सकूंगी सुत को, किसी तरह भी डरो नही ।।
सारी सारी रात गोद में, शिशु को लिए खडी रहती ।
फिर भी अपनी सेवाओ को, मन से नही बड़ी कहती ।।

बाल-लीला

क्षण मे रोना क्षण मे हँसना, उदासीन क्षण में होना ।
क्षण में इधर उधर क्षण भर में, क्षण भर मे जगना-सोना ।।
क्षण में भूखा, क्षण में प्यासा, क्षण भर मे बन जाता तृप्त ।
क्षण भर भी विश्राम न लेना, नही कही पर बनना लिप्त ।।
जो भी प्यार करे उससे शिशु, प्यार करे निश्छलता से ।
नीति शठे शाठ्यं की सीखी, नही अभी तक जनता से ।।
सुनना और समझना सब कुछ - कहना अपना बोल नही ।
मन के भेद खोल दे ऐसी, पाई जाती पोल नही ।।
बडी सजगता से पद रखता, मानो चलता कोई सत ।
शिशु को गिरने का भय रहता, मुनि को पाप-भीति अत्यन्त ।।

मैले तन की लाज न शिशु को, मन उजला है हँस समान ।
जैन साधुओ ने अपनाया, इसी भाव से व्रत अस्नान ।।

सिवा मधुर रस के वाणी ने, रस का किया प्रयोग नही ।
इसीलिए शिशु की बोली से, ना खुश बनते लोग नही ।।

जो कुछ करना करना है बस, इसे बालहठ कहते हम ।
इस पद्धति पर दृढनिश्चित का, पला न करता क्या अनुक्रम ।।

मां को ही झुकना पडता है, शिशु की इच्छा के आगे ।
मां भगती है पीछे पीछे, आगे-आगे शिशु भागे ।।

फुसलाने से और बुलाने - से, शिशु आता पास नही ।
मोक्ष निकट कब आ सकता है, जब सम्यग् विश्वास नही ।।

शैशव की सुन्दरता सबके, सम्मुख खुलकर आती है ।
यौवन की सुन्दरता खुद से मन ही मन शरमाती है ।।

जम्बू का रूप

जम्बू की मां ने शैशव की, लीलाएँ देखी सारी ।
मां की लीला सुत की लीला, एक दूसरे को प्यारी ।।

विना सूचना दिए एक दिन, शैशव छुपकर बोला पार ।
सोचा अधिक ठहरने से ही, प्रियजन भी बन जाते भार ।।

काले घुंघराले बालो पर, भौरो को ईर्ष्या होती ।
सीप सोचती दन्त देखकर, मुख मे क्यो उपजे मोती ।।

बिंबफलो की प्रतिस्पर्धा मे, अधरलालिमा जीत गई ।
गाल गुलाबी बोल रहे है, खिलने की लो रीत नई ।।

दीर्घ भुजाएँ देख कमल के, नाल बने जल शरण सभी ।
मृग कहते दो नयन हमारे, किए गए अपहरण कभी ।।

कोयल कहती मैने पाया, जम्बू के स्वर से माधुर्य ।
मिला बांटने को जम्बू से, सरस्वती को कुछ चातुर्य ।।

देख देहबल मोटापा ने, आने का मन किया नही ।
श्रम से डरकर कोमलता ने, जाने का मन किया नही ।।
जम्बू की गति में जब देखी, अजब गजब वाली मस्ती ।
राजहस ऐरावत डर कर, छोड़ गए शहरी बस्ती ।।
रग रूप की एकरूपता, एक साथ मिलकर रहती ।
कहती खमतखामणा है अब, हम न किसी से कुछ कहती ।।

जम्बू का शिक्षण

शिक्षण दिलवाने जम्बू को, बिठलाया अब शाला में ।
शाला में संशोभित होता, मेरु यथा मणिमाला मे ।।
पढा हुआ जो पूर्वजन्म से, उसको कौन पढायेगा ।
इसे पढाकर के भी शिक्षक, अपना ज्ञान बढायेगा ।।
वहुत योग्यता पाई परखी, उत्तम शिक्षा लेने की ।
शिक्षा त्वरता दिखलाती है, स्थान स्वय को देने की ।।
विपय न छोड़ा,कला न छोडी, छोड़ा एक प्रयोग नहीं ।
जिसे अभी तक समझ स्पर्श, तक पाये शिक्षक लोग नही ।।
जिसे देख आश्चर्यान्वित थे, छात्र और अध्यापक जन ।
त्वरता तत्परता से करता, श्री जम्बू अध्ययन गहन ।।
आठ वर्ष के होते होते, पूर्णतया उत्तीर्ण हुए ।
वे उत्तीर्ण हुए कैसे जो, शिक्षित हो संकीर्ण हुए ।।

जम्बू की संभ्रान्तता

मानवता को समझा सीखा विनय विवेक सहित व्यवहार ।
व्यवहारो की सुदृढ नीव पर, खड़ा हुआ सारा संसार ।।
सदुपयोग करना सीखा है, प्राप्त समय-जीवन-धन का ।
मूल्यांकन करना सीखा है, सिद्धि और शुभ साधन का ।।
स्पष्ट स्पष्ट कहना सीखा है, वहना सीखा चुप रहकर ।
सुनना सीखा चुनना सीखा, धुनना सीखा कुछ कहकर ।।

धुलना सीखा मिलना सीखा, सीखा पीछे हट जाना।
कभी नही सीखा निज मुख से, कहकर पीछे नट जाना ॥
देना सीखा लेना सीखा, सीखा सत्य पचाना भी।
अगुलियो के संकेतो पर, सीखा किसे नचाना जी ॥
पढ़ना सीखा चढ़ना सीखा, बढ़ना सीखा सुख की ओर।
सीखा पहले क्यो न देखना, अपने प्यारे मुख की ओर ॥
मित्र बनाना सीखा, सीखा चित्र बनाना भावी का।
चित्त पवित्र बनाना सीखा, नर अपवित्र स्वभावी का ॥
हित शिक्षा अपनाना सीखा, सीखा हित पथ दिखलाना।
सीखा किसको क्या कब कैसे, उचित रहेगा सिखलाना ॥
मधुर बोलना सीखा सीखा, भेद खोलना नही कभी।
सीखा यहां बैठने का भी, अवसर है या नही अभी ॥
दुर्व्यसनो से दुरवस्था से, दुष्टो से सीखा बचना।
सीखा कैसे करना अपने, जीवन की सुन्दर रचना ॥
घूट जहर की पीना सीखा, सीखा सुख में रहना शान्त।
ऐसे श्री जम्बू का जीवन, था निर्भ्रान्ति पूर्ण सभ्रान्त ॥

जम्बू का स्थान

जिसकी ओर देखता जम्बू, उस पर अमृत ढल जाता।
जिसकी ओर देखता जम्बू, भाग्य उसी का फल जाता ॥
जिस रास्ते से जाता जम्बू, बन जाता वह पंथ पवित्र।
श्री जम्बू को पढा जा रहा, मानो धार्मिक ग्रंथ सचित्र ॥
जम्बू से मिलते-जुलते ही, श्री जम्बू के अपने मित्र।
जम्बू के दर्शन से बनते, राजगृही के नेत्र पवित्र ॥
माताएँ कहती जम्बू सम, मेरा आत्मज हो जाये।
सहजभाव से अनुज सोचते, ऐसे अग्रज हो जाये ॥

कुलवधुओ ने कहा प्राणप्रिय, जम्बू सम सौभागी हो ।
जिन्हे देखकर घर-घर सारे, अंतर से अनुरागी हो ॥

पिता सोचते सात सुतो मे, जो हो जम्बू जैसा एक ।
हम भी ऋषभदत्त के सम-सम बनते सुखी पुत्र-सुख देख ॥

मित्र चाहते मित्र हमे भी, जम्बू जैसे मिल जाते ।
धोखा खाते नही कभी भी, भाग्य शीघ्र ही खिल जाते ॥

दास चाहते श्री जम्बू की, करने को मिलती सेवा ।
कहते है देवज्ञ देखते, हम भी जम्बू का टेवा ॥

अश्व चाहते एक बार ही, हम पर हो जम्बू असवार ।
सत्पुरुषो के पुण्यस्पर्श से, क्यों न हमारा हो उद्धार ॥

जम्बू की भावी संगिनियां

राजगृही के आठ सेठ थे, आठो के कन्याएँ आठ ।
आठो ही के घर पर सम-सम, रहता लगा राजसी ठाठ ॥

रूप भिन्नता को न जानती, अभिन्नता उन आठों की ।
मानो एक समान पंक्तियां, सर के आठो घाटो की ॥

विद्या, विनय, विवेक, योग्यता, नाप, भार, आकार, विचार ।
एक पत्र की प्रतिलिपियाँ सम, विधि ने रखी सवार-संवार ॥

आने, जाने, खाने, पाने, गाने तथा नहाने की ।
रुचि सम होती अरुचि दिखाती, खिचडी अलग पकाने की ॥

किसी एक के भी अभिभावक, बाधा सकते डाल नही ।
कन्याओ के प्रति युग-चिन्तन, तत्सम आज विशाल नही ॥

सकल हिताहित स्वयं तोलती, और तोलती घर का मन ।
किसी भाति से कभी न तोडा कन्याओ ने कुल बन्धन ॥

नही शिकायत किसी तरह की, किसी पक्ष से वे लाई ।
गई समय पर काम समय पर, सलटाकर वापिस आई ॥

आने जाने करने का सब, देती घर को भेद बता ।
कहां मिलेगी लिखकर देती, अपना असली स्थान पता ॥
ये कन्याएं श्री जम्बू का, सभी तरह से देगी साथ ।
शादी होगी संयम होगा, सारी एक रात की बात ॥

वसन्त दर्शन

राजागनी, नाग, नारंगी, कोमल कदली, लवली, द्राक्ष ।
आम्र, सल्लकी, जम्बू, नीबू, तरु पद्माक्ष तथा रुद्राक्ष ॥
चन्दन, कुन्द, करौदा के सह, कुंद तथा मचकुन्द खड़े ।
मन्द मन्द मकरद दे रहे, खड़े हुए मन्दार बड़े ॥
मधुकर मधुर पराग पुज पर, गुंजन करते जी भरकर ।
उपवन से उठ बाहर आई, विरहिणिया इनके स्वर-पर ॥
कुहू-कुहू कर कोयलियो ने, भरे दिशाओ के सब कान ।
कान किसी के भर देने से, किसी तीसरे का नुक्सान ॥
वसुंधरा की हरीतिमा ने, हरित बनाया नीलगगन ।
अपने जैसा वही बनाता, जिसके मन में लगी लगन ॥
नही सिचाई का मुख ताका, लिया न सावन का सहयोग ।
ऋतुरानी ने अपने बल से, हरे बनाये सारे लोग ॥
इतनी वर्षा इन वर्षो में, हमने देखी नही पड़ी ।
ऋतुरानी की एक शिकायत, लिखी हुई क्या कही पढी ॥
इतनी सर्दी इन वर्षो मे, हमने देखी नही पडी ।
ऋतुरानी की एक शिकायत लिखी हुई क्या कही पढ़ी ॥
इतनी गर्मी इन वर्षो में, हमने देखी नही पडी ।
ऋतुरानी की एक शिकायत, लिखी हुई क्या कही पढ़ी ॥
बड़े नही दिन बड़ी निशाएँ, पौष मास का निर्णय है ।
बड़ी निशा न, बड़े वासर है, ज्येष्ठ मास का निश्चय है ॥

बड़ी निशा न बड़े वासर है, दोनो का है समय समान ।
ऋतुरानी के शुभागमन पर, क्यो हो कोई हीन महान ॥
किसी अन्य के विना सहारे, फूला करता स्वय वसन्त ।
स्वर सहयोग विना कोई भी, उच्चारित होते न हलन्त ॥

जम्बू और वसन्त

मित्र मडली श्री जम्बू की, चली वसन्त मनाने को ।
घर वाले न इजाजत देते, कही अकेले जाने को ॥
नही दूर अति नही निकट अति, अत्युत्तम था उपवन एक ।
इसको देखो अथवा नन्दन - वन की पर छाई लो देख ॥
तरुओ की छाया मे बैठे बैठे गाना गाते लोग ।
कोई वही बनाते कोई, बैठे खाना खाते लोग ॥
कोई खेल खेलते नाना, कोई दौड लगाते है ।
कोई अपने मन में तन मे, नव्योत्साह जगाते है ॥
कोई रूठी राधाजी को, खुश करने मे लगा हुआ ।
कोई कटी छुपा कोने मे, चोरी करके भगा हुआ ॥
दुख भूलने की आशा से, नशा-पता करता कोई ।
नशेबाज नर की छाया से, दूर खडा डरता कोई ॥
कोई फूल देखता कोई, निरख रहा फूलो का रग ।
फूलो पर उडती तितली का, कोई देख रहा है अग ॥
कोई कहता प्याला भरकर, एक घूट पीले पीले ।
पीले पीले की आदत से, गाल ओठ पडते पीले ॥
कोई कहता प्रतिदिन आना, सीखो करना प्राणायाम ।
फुर्सत नही मिला करती है, कोई कहता इतना काम ॥
कोई नर अध्ययन-मग्न बन, करता कठिन सूत्र कण्ठस्थ ।
हो जाऊँगा स्वस्थ यहां पर, आकर सोच रहा अस्वस्थ ॥

जम्बू अपने मित्रों को ले, घूम रहा है इधर-उधर ।
इधर-उधर हो जाने से ही, क्या मन जाता नही सुधर ?॥
स्वास्थ्य समाज धर्म पर चर्चा, करते अति गहराई से ।
ज्ञान बड़ा करता चर्चण से, केवल नही पढ़ाई से ॥
दृष्टिकोण अपना अपना सब, स्पष्ट स्पष्ट सम्मुख रखते ।
एक दूसरे की व्याख्या का, स्वाद अनूठा ही चखते ॥
चलते जाते रुकते जाते, नजर घुमाते जाते थे ।
शुष्क आर्द्र मेवे मिल करके, खाते और खिलाते थे ॥

उपवन के हिस्से में

सुन्दर उपवन के कोने में, बैठी वे कन्याएँ आठ ।
पढती कही परस्पर मानो, प्रणय-वाणिनी वाला पाठ ॥
शैशव स्थानान्तरित हो गया, यौवन ने यह स्थान चुना ।
इससे उसको उससे इसको, गुनने पर सब आठ गुना ॥
अविवाहित है अभी अतः हम, रह पाती है साथ हमेश ।
क्या न विवाहित हो जाने पर, अलग न होगे प्रान्त प्रदेश ॥
कौन किसी की स्मृति मे अपनी, सुधु-बुध खोनेवाली है ।
सुख में दुख में कौन किसी के, शामिल होने वाली है ॥
प्रेम-पत्र लिखने की फुर्सत, किसे मिलेगी बतलाओ ।
पड़े न दुर्दिन हमें देखना, मार्ग आज वह अपनाओ ॥
अपने जीवन साथी का हम, चयन करेगी अपने आप ।
अथवा अभिभावक करदेगे, अपना मत दो इस पर साफ ॥
सबके लिए एक ही पति का, चयन करे हम अपने-आप ।
कभी भोगना नही पड़ेगा, अलग विछुरने का अभिशाप ॥
सुनते ही सब बोल उठी है, हां हां यही करेगी हम ।
कोई बाधाएँ डालेगा, उससे नही डरेगी हम ॥

देखो युवक घूमते इतने, इनमें से ही चुनलो एक ।
अगर नही वह स्वीकारे तो, स्थिर रखना फिर आत्मविवेक ॥
अन्य किसी के साथ नही हम, पाणिग्रहण करवायेंगी ।
क्वांरेपन के ससेवन मे, सुख-पूर्वक मर जायेंगी ॥
यह देखो ! वह देखो !! ऊंहूँ-ऊंहूँ बोलो बोलो और ।
देखो वह आगे से आता, जम्बू अपने मन का चोर ॥
हा हां, हां हां, ठीक ठीक है, बदल नही कोई पाये ।
कोई धमकाये समझाये, भले शपथ दिलवा जाये ॥
परिचित थी सारी की सारी, जम्बू के उज्ज्वल यश से ।
सत्य हकीकत सुन पायी थी, नही एक जन से, दश से ॥
अपने अपने घरवालों से, अपना निर्णय कहना है ।
अपने लिए हुए निर्णय पर, हम सबको स्थिर रहना है ॥
निर्णय शक्ति शक्ति कहने की, इन आठों की अजब गजब ।
शक्ति नही जीवित रह पाती, पुरुष प्रभावो से दब-दब ॥

मेले की समाप्ति

घूम घुमाकर सूर्य स्वयं ही, लगा पहुँचने अपने घर ।
घर जाने को तत्पर है अब, मेले वाले नारी-नर ॥
आजा पिटू, सिटू आजा, कर दो अपना खेल खतम ।
अब न रुकेंगे हम जाते है, कभी खेल लेना फिर तुम ॥
मित्र मित्र के साथ उठा है, उठा पुत्र माता के साथ ।
अनुज उठा अग्रज उठते ही, रुकने की जब रही न बात ॥
कैसा रहा आज का मेला, बाते करते आपस में ।
मेले मे रस ले न सके वे, डूबे बातो के रस में ॥
जम्बू गये गये साथी जन, देख दिखा करके मेला ।
नही सभी के लिए एक सम, फल लाती शुभ पुल-वेला ॥

कन्याएँ वे गईं सो गईं, अपने अपने घर पर जा ।
अच्छी रही बताओ बेटी ! पूछा माताजी ने आ ।।

एक नया साहस

प्रातः होते ही कन्याएँ, आईं मात-पिता के पास ।
प्रणमन करने का इनको था, बाल्यावस्था से अभ्यास ।।
बोली विनय सहित कल हम सब, ऐसा निर्णय ले आईं ।
सिवा एक जम्बू के सारे, पुरुष हमारे है भाई ।।
आठो ही हम श्री जम्बू से, पाणिग्रहण करवायेगी ।
ऐसा होगा नही अगर तो, अविवाहित रह जाएंगी ।।
सुन बोले मां बाप सभी के, निर्णय दृढ़ है सुन्दर है ।
हमें ढूढने कही न जाना, जम्बू जब इनका वर है ।।
आठों सेठ बैठ आपस में, एक सलाह बनाते है ।
अच्छे सगुन मनाकर सारे, जम्बू के घर आते है ।।

सम्मान और बात

ऋषभदत्त ने कहा आइये, कैसे आज उठाया कष्ट ।
जो भी आज्ञा हो फरमाये, सुनने को उत्सुक हूँ स्पष्ट ।।
हम आठो की आठ सुताएँ, एक साथ देने आये ।
इसके लिए आपके मुख का, एकवचन लेने आये ।।
बोला सेठ महरवानी है पर, कैसे ली जाये आठ ।
लिए एक के एक चाहिए, टीका सहित समझलो पाठ ।।
अधिक स्त्रियों का होना अनुचित, नही मानना युग अपना ।
शालिभद्र श्री धन्नाजी का, जीवन सत्य, नही सपना ।।
बड़े भाग्यशाली पुरुषो के, अधिक स्त्रियां भी होती है ।
सौत मौत गिनकर अपनी, वे नही कभी भी रोती है ।।
अपने अपने हिस्से का सुख, सबको मिलनेवाला है ।
स्थान मिलेगा उसे पुष्प जो, जब भी खिलने वाला है ।।

तदुपरान्त इन कन्याओं ने, अपना निर्णय हमें कहा ।
कुछ भी अन्य विकल्प सामने, हम लोगो के नहीं रहा ।।
होगा पाणिग्रहण यह होगा, अगर न होगा तो सारी ।
नही विवाह करेगी सारी, उम्र रहेगी वे क्वांरी ।।
हस्तक्षेप न हम करते है, कन्याओ के निर्णय में ।
क्योकि सभी वे समझदार है, बहुतो से इस लघुवय में ।।
कहा सेठ ने भीतर जाकर, परामर्श कर आऊं मै ।
जो भी चिन्तन होगा आकर, सबसे स्पष्ट वताऊ मै ।।

सेठ और सेठानी

जम्बू की मां ! सुनो सेठ ये, सगपन लेकर आये है ।
इनकी आठों कन्याओं के, मन को जम्बू भाये है ।।
एक सास के पांव दबाने, बहुएँ लाई जाये आठ ।
अपने बेटे जम्बू जी का, होगा और निराला ठाठ ।।
मां बोली अपने जम्बू ने, यदि संयम लेना सोचा ।
तो इस वैवाहिक चर्चा मे, पड भी सकता है लोचा ।।
बोला सेठ सोचना क्या है, अन्तराय हम क्यो देगे ।
हमें नही वैराग्य हुआ तो, हम वह रास्ता क्यो लेगे ।।
आए है ये सेठ इन्हे क्यो, किया जाय इन्कार भला ।
आती लक्ष्मी को ठुकराना, कहो कहां की रही कला ।।
परिचित सेठ पुत्रियां परिचित, परिचित है इनका परिवार ।
किसी अपरिचित की कन्या को, लेने हम क्यों हो तैयार ।।
सम्मति पाकर बाहर आकर, लिया नारियल सगपन का ।
रहा पूर्ण सम्मान सभी का, प्रेम बढा अपने पन का ।।
खुश होकर घर आये आठो, सारी विधियां कर संपन्न ।
घर सपन्न नही हो जिनके, मिलता उन्हे न विधि से अन्न ।।

सुधर्म्म का आगमन

गणधर देव सुधर्मा स्वामी, राजगृही में आये है ।
महावीर के प्रथम पट्टधर, ज्योतिर्धर कहलाये है ।।

गुणशैलक उद्यान में, हुए विराजित आप ।
होते संतों के लिए, निश्चित क्रिया-कलाप ।।

मिली सूचना श्री संघों को, झूम उठा जन जन का मन ।
बहुत अभीप्सित बहुत प्रतीक्षित, था गुरुवर का शुभागमन ।।
दर्शन पाकर चरण स्पर्श कर, पूछ रहे जन सुख-साता ।
संयम की यात्रा में भगवन् !, विघ्न नही कोई आता ?।।
प्रवचन सुनने की इच्छा से, श्री जम्बू भी आये है ।
अपनी मित्रमंडली को भी, साथ बुलाकर लाये है ।।

प्रवचन में मानवता

परिषद एकत्रित होते ही, प्रवचन किया गया प्रारम्भ ।
धर्म महल टिकता है जिस पर है वह मानवता का स्तभ ।।
मनुष्यत्व ही प्रथम अग है, चारों अंगो का आधार ।
मनुष्यत्व के बिना धर्म का, और मोक्ष का अन्य न द्वार ।।
घर का भार भार भूतल का, बनो नही पा नर अवतार ।
बनो हार-श्रृंगार जगत के, घर का भू का भार उतार ।।
सेवाए दो, लिए देश के, जिससे अपना उतरे ऋण ।
फिसल न जाऐ पाँव धर्म की, सेवा-भूमि बड़ी मसृण ।।
मानवता के विना धर्म की, नही योग्यता होती प्राप्त ।
व्याप्ति भाव को समझा जाये, धूम अग्नि में रहता व्याप्त ।।
आत्म शुद्धि है धर्म, धर्म की - सीधी सादी परिभाषा ।
दूर धर्म से ले जाती है, पुद्गल की तृष्णा-प्यासा ।।
जब तक देती काम इन्द्रियां, जब तक देता काम शरीर ।
जब तक है पुरुषार्थ वीर्य बल, जब तक ऊँची है तकदीर ।।

तब तक धर्म क्रियाऐ करलो, करलो काम भलाई के ।
पय ओटाये बिना न मिलते, लच्छे यहाँ मलाई के ॥
जब तक सुन सकते हो सुनलो, मंगलमय श्री जिनवाणी ।
सुन पायेगा शब्द नहीं तब, धर्म सुनेगा क्या प्राणी ॥
जब तक आँखे काम दे रही, दर्शन करलो संतो के ।
अंधे क्या अध्ययन करेगे, नाम पढेगे, ग्रन्थो के ॥
जब तक रसना काम दे रही, तब तक करलो जिन गुण-गान ।
विकट मन:स्थिति हो जाती है, जब न जीभ मे रहती जान ॥
जब तक देह शक्ति है तब तक, मार्ग भक्ति का पकड चलो ।
उठा न जाता जिससे उसको, कौन कहेगा अकड़ चलो ॥
जीवन रहते रहते कर लो, जो भी करना काम भला ।
काम भला करने वाले का, अमर रहेगा नाम भला ॥
समय निकल जाने पर पीछे, रहता केवल पछतावा ।
भला हाथ कब आयेगी, जो कर से छूट गई नावा ॥
एक स्वीच के दबने से ही, होता है अधेर प्रकाश ।
मन के नीचे दबा पड़ा है, अविश्वास धार्मिक विश्वास ॥
एक पवन के झोके से ही, मिट जाती दीपक की शान ।
सांस नही ऊपर आने से, मिट जाती जीवन की शान ॥
महावीर से तीर्थंकर भी, रहे न हमको रहना है ।
जाना है निश्चित जाना है, सावधान हो रहना है ॥
ताप जरा सा लग जाने से, देखो मोम पिघल जाता ।
भूल जरा सी हो जाने से, देखो पाँव फिसल जाता ॥
शीत जरा सा लग जाने से, झरने लग जाता है घ्राण ।
चोट जरा सी लग जाने से, क्या न निकल जाते है प्राण ॥
जीते जी का मोह द्रोह है, जीने का विश्वास नही ।
जीते जी भी क्यो न मृत्यु का, हो पाता अहसास नही ॥

जरा सोचिए जरा समझिए, और लीजिए निर्णय सत्य ।
सार यही है जिन प्रवचन का, धर्म सत्य है 'नही असत्य ।।'
धुन्धलापन मिट गया मिला है, लोगो को दिग्बोध नया ।
संतों के मन में होती है, जीव मात्र पर बडी दया ।।
जिन प्रवचन का लाभ उठाकर, श्रोता लोग गये सारे ।
धर्म भावना फैल रही है, लोगों के द्वारे द्वारे ।।
एक अपूर्व लाभ प्रवचन का, होने वाला है जानो ।
श्री जम्बू की दीक्षा होगी, मानो चाहे मत मानो ।।

स्तंभ समाप्ति

रचना स्तंभ चतुर्थ की, बडी चतुरता पूर्ण ।
पुष्कर इसमें बोलता, जिन दर्शन सपूर्ण ।।
देखे स्तंभ चतुर्थ ने - बचपन और वसन्त ।
वर्णन के वैविध्य से, रोचकता अत्यन्त ।।
अपनी रचना पर न हो, जब अपना विश्वास ।
पुष्कर उसका सफल क्या, होता कभी प्रयास ।।
रखा यही लिखते समय, अपने सम्मुख ध्येय ।
देगी जम्बू जीवनी, जीवन का पाथेय ।।
पुष्कर पंचम स्तंभ का, अब होगा निर्माण ।
जीवन रक्षा के लिए, एक नही दश प्राण ।।

●

पंचम स्तम्भ

मंगलाचरण

दोहे

पंच महाव्रत सम बनो, पंचम स्तभ पवित्र ।
पुष्कर चला उतारने, जम्बू जी का चित्र ॥
अरुचि भोग से हो जिन्हे, वे बड़भागी लोग ।
पुष्कर त्याग विराग का, करिये सरल प्रयोग ॥
रोग त्यागने के लिए, देना युक्ति प्रयुक्ति ।
भोग कर्म का बन्ध है, त्याग कर्म की मुक्ति ॥
भामिनियो को भोग से - मोड त्याग की ओर ।
लेकर चलने में न क्या, पुष्कर पडता जोर ॥
पाणिग्रहण से पूर्व ही, ब्रह्मचर्यव्रत धार ।
पुष्कर जम्बू ने किया, कार्य खड्ग की धार ॥

प्रवचन के पश्चात

राधेश्याम

प्रवचन सुन कर हुआ प्रभावित, जम्बू जी का कोमल मन ।
प्रथम वार यह मुनि दर्शन है, प्रथम वार है धर्म-श्रवन ॥
जीवन-विषय-भोग-जग वाली, आस्थिरता का ज्ञान हुआ ।
इन वातो पर इस दुनिया को, क्यो मिथ्या अभिमान हुआ ॥
आये उठकर निकट सुगुरु के, सम्मुख अपने रखे विचार ।
हे गुरुदेव; मुझे लगता है, कर्म जन्य जग कारागार ॥

संयम ग्रहण करूंगा सुख से, भव से पार उतरने को ।
किरण ज्ञान की प्राप्त होगई, अंधकार-बल हरने को ॥
गुरु बोले-ओ जम्बू ! इस पर, सोचो फिर कुछ बात करो ।
ज्ञान-ध्यान-तप-जप-संयम की, विधियों का साक्षात् करो ॥
आप उतावल करो न किंचित, मात-पिता की अनुमति लो ।
द्रव्य क्षेत्र हो काल भाव हो, लो संयम जो अवसर हो ॥
अच्छा भगवन् ! आप यही पर, विराजना कुछ दिन तक और ।
मुझ लगाना भी पड़ जाये, अनुमति पाने में कुछ जोर ॥
एक पुत्र मै और लाडला, अर्धविवाहित हूँ गुरुवर !
पला प्रेम की शुभ शय्या में, आज्ञा पाना अति दुष्कर ॥
जम्बू ! आज्ञा मिल जाएगी, चेष्टा करना अपना फर्ज ।
अगर प्रयत्न विफल हो जाए, तो न समझना कोई हर्ज ॥
शिक्षा सुनकर साहस भरकर, उठा वन्दना स्तवना कर ।
मित्र मडली को सह लेकर, रथ पर चढकर आता घर ॥

एक अन्य कारण

कोट द्वार के पास पहुँचने, पर दुर्घटना एक घटी ।
हटी नही होने से देखो, नियति स्वयं में बहुत हठी ॥
पत्थर टूट पड़ा ऊपर से, मानो टूट पड़ा आकाश ।
जंबू का क्या होता, होता अभी अगर थोडा सा पास ॥
होता बडा बचानेवाला, क्या न मारनेवाले से ।
मरी न मीरां महादेव भी, मरे न विष के प्याले से ॥
रथ भी रहा सुरक्षित साथी, रहे सुरक्षित सारे ही ।
विपत्तियां जम्बू से डरती, रहती खड़ी किनारे ही ॥
जम्बू लगा सोचने मन मे, अभी अभी मैं मर जाता ।
दीक्षा ले पाता न किसी का, भला नही कुछ कर पाता ॥

आते साथ न मात-पिता भी, आते साथ न ये साथी ।
धन दौलत वैश्रमणी भी, क्या मेरे साथ चली आती ।।
खाली हाथो जाना पड़ता, भाथा होता साथ नही ।
दुर्घटना से सीखी जाती, कैसी ऊंची वात नहीं ।।
जाऊ वापिस गुरुचरणो में, कुछ-कुछ प्रत्याख्यान करू ।
ब्रह्मचर्य स्वीकार करू फिर चाहे जब भी क्यो न मरू ।।
लौटा-आया, गुरुचरणो में, बीता हाल सुनाया स्पष्ट ।
ब्रह्मचर्य व्रत मुझे दीजिए, जिससे हो वाधाऐं नष्ट ।।
गुरुने प्रत्याख्यान दिलाया, निरख मनोवल अति मजबूत ।
क्या मजवूत नही होता है, विधि से कता हुआ भी सूत ।।
व्रत लेने की बड़ी खुशी ले, खुशी-खुशी से घर आया ।
बोला मात-पिता को ऐसे, मैं गुरु-दर्शन कर आया ।।'

माता पिता के सामने

प्रवचन सुना तत्त्व को समझा, जाना जग का सही स्वरूप ।
मोह पाश का विपय दास का, जाना जो भी है विद्रूप ।।
अनुमोदित आज्ञापित कर दो, पांच महाव्रत मैं धारू ।
मानव जन्म मिला है हीरा, इसे व्यर्थ मे क्यों हारू ।।
जीव-जीव की रिश्तेदारी, देखो टूटी जुडी न क्या ? ।
डिविया मे भर देने पर भी, अमृतधारा उड़ी न क्या ? ।।
जन्म-मरण का चक्र घूमता, कभी किसी ने देखा बन्द ?।
जीने को क्या ? जन्म मरण को, मान लिया हमने आनन्द ।।
तत्त्व गूढ बनता जाता है, हटते कर्मावरण नहीं ।
सदाचरण चरण करण का, चिन्तन होता स्फुरण नही ।।

वेदना के क्षण

घवराहट होने लगी, सुनकर सुत की बात ।
मात-पिता का हृदय भी, रहा नही अब हाथ ।।

चारों आंखों में तुरत, लगा छलकने नीर ।
अश्रु बिन्दुओ ने दिया, हाय ! कलेजा चीर ॥
सिर्फ सगाई ही हुई - हुआ नहीं है व्याह ।
गजब न ढाहेगी कहो, कन्याओ की आह ॥
सगे कहेगे क्या हमें, क्या बोलेंगे लोग ।
लगा दिया सुत को कहां, यह सयम का रोग ॥
क्यों भेजा कैसे गया, क्या कर आया लाल ।
बदल नही सकते कभी, जो दृढ बने खयाल ॥
बुरे काम से रोकना, मात-पिता का काम ।
रोके सयम से इसे, लेकर किसका नाम ॥
चेष्टा अपनी ओर से, करे एक से लाख ।
खट्टी बन सकती नही, पकी-पकाई दाख ॥

परीक्षण के क्षण

बोले माता पिता पुत्र ! तू, कोमल है तन से मन से ।
घबरा जायेगा न बता क्या, तप-संयम आराधन से ॥
परीषहो के आने पर क्या, समतापूर्वक सह लेगा ।
सम मानापमान में रहकर, भूखा प्यासा रह लेगा ॥
क्या न सत्य व्रत ब्रह्मचर्य व्रत, अपरिग्रह व्रत बहुत कठिन ।
नही एक दिन आजीवन इन, सबका ही करना पालन ॥
छोड अधूरी धर्म-साधना, वापिस भोग न अपनाना ।
कोई नही विकल्प सामने, स्थिर रहने का बलपना ॥

साहस का दर्शन

बोला-जम्बू मुझे आपने, क्या कायर ही मान लिया ।
मेरी मनोभावना पर क्यों, नही जरा भी ध्यान दिया ॥

आजीवन का ब्रह्मचर्यव्रत, ले आया मैं पहले से ।
मुझे बताओ दहला मरता, कभी किसी भी नहले से ॥
व्रत आचरण करणयोगों से, विधि से पाले जाएगे ।
सहे सहर्ष सभी जाएंगे, विघ्न उपद्रव आयेंगे ॥

मां की एक बात

माता बोली प्यारे बेटे ! एक बात तो मानेगा ।
जिसे टूटने का भय होता, वह क्यो रस्सी तानेगा ॥
बधा सगाई का कल धागा, आज उसे कैसे तोड़े ।
उनसे कहे सुने क्या उनसे, अपनी रुख कैसे जोड़े ॥
करो विवाह सलाह मान लो, वाह वाह हो जायेगी ।
किसी तरह की अपने सिर पर, बात नही रह पायेगी ॥
जम्बू ने सोचा यह कैसा, जाल बिछाया जाता है ।
माता का इतना सा आग्रह, क्या ठुकराया जाता है ॥
माताजी ! मैं स्पष्ट बता दू, नही मानना इससे कष्ट ।
आज विवाह रचादो चाहे, कल ही सयम लेना स्पष्ट ॥
उनको उनके मात-पिता को, समझा दे यह सारी बात ।
पहले दुख पीछे सुख देती, मुख पर वारी खारी बात ॥
अच्छा ऐसा ही कर देगे, इसमें कोई दोष नही ।
मां का मान रखा जो तूने, यह भी कम सतोष नही ॥

-माता-पिता (स्वगत)

माता-पिता सोचते मन में, भाव बदल जायेगे जो ।
चिकनाहट पर पडते ही ये, पॉव फिसल जाएगे जो ॥
विषय वासना बडा रोग है, लगने पर कब छूटा है ।
बड़े बडे ऋषियों मुनियो को, इन विषयों ने लूटा है ॥
इस यौवन इस धन इस तन पर, यह मन ललचा जायेगा ।
आठ नवोढ़ाओ के सम्मुख, रुख भी पलटा खायेगा ॥

एक तूफान

बुलवाया आठों सेठों को, साफ सुनाई सारी बात ।
सोचो आप शांति से इसको, मानो मत कोई आघात ॥
बोले आठों हम क्या बोले, पूछेंगे बिटियाओं से ।
नृत्य सजा करता है सुन्दर, पांवों के बिछियाओ से ॥
गये, बुलाई गई लड़कियाँ, हाल सुनाकर बने उदास ।
जाओ निर्णय ले आओ बस, जाना वापिस उनके पास ॥

कन्याओं की सूझ

आठों मिली खिली आपस में, है क्या यह किस्मत का चक्र ।
दूध समझकर अपनाया था, निकला आज वही क्या तक्र ॥
क्या वह आज विवाह रचाकर, कल संयम अपना लेगा ।
संयम मे सोया सोया वह, बहुओ का सपना लेगा ॥
क्या हम इतनी दुर्बल है जो, जाने देगी उसे तुरत ।
स्नेह जोडना स्नेह तोडना, माना गया कठिन अत्यन्त ॥
नारी एक बहुत होती है, एक नही हम तो है आठ ।
किसने सीखा नही पहाड़ा, पन्द्रह चौकू पूरे साठ ॥
पाणिग्रहण स्वीकार करे या, करने से इन्कार करे ।
इससे पहले अपने मन की, स्थिति पर विशद विचार करे ॥
जम्बू बिना किसी नर से भी, कर पायेगी नही विवाह ।
फिर इससे ही करवाने में, कहो कौन सा हुआ गुनाह ॥
दीक्षा लेगा तो ले लेगा, घबराने की बात नही ।
प्रथम रात सोहागरात है, बाकी कोई रात नही ॥
चलो सुना दो निर्णय अपना, हम शादी करवायेगी ।
किस्मत में जो लिखा हुआ है, उसे यही भर पायेगी ॥
कन्याओ के दृढ़ निश्चय से, मात-पिता ने बल पाया ।
स्पष्ट समझने वाले मन ने, कही न कोई छल पाया ॥

ऋषभदत्त से कहा सभी ने, कन्याएँ—हम है तैयार।
एक बार जो बात हो गई, वही सहर्ष हमें स्वीकार॥

विवाह की तैयारी

सेठ और सेठानी का मन, आज हर्ष से नाच उठा।
हर्ष बढाने की इच्छा से, रहे हर्ष से हर्ष लुटा॥
आज, अभी तैयारी सारी, पाणिग्रहण की की जाए।
श्रेय सूचना देनी जिनको, आज अभी ही दी जाए॥
विज्ञ द्विजन्मा को बुलवाकर, जम्बू को वर दिया बना।
सुखपूर्वक शादी करने को, विनयी सुत को लिया मना॥
अंग धवलिया सुयश धवलिया, वेष धवलिया संग मिली।
कौन अधिक है कौन हीन है, लगी सोचने खिली-खिली॥
सर पर मुकुट सजा रत्नो का, वेष देश अनुकूल सजा।
दशो दिशाओ को गुंजाते, भांति भाँति के वाद्य बजा॥
तक्खा तखिखि तखि तक्खि बोलता, किरिरि-किरिकरि बोल रहा।
ढक्का झं झं डमरू डमडम, मर्दल घुम घुम घोल रहा।
समसम रुंजा मुरज घमाघम, थग थुगि पटह सुनाता है।
रणझण कांस्य तरड खरतडखर, काहल तडतड गाता है॥
हू हू शंख शब्द सुखकारी, डक्काऐ करती डमडक्क।
शुभ कंसाल विशाल स्वरो से, लगा मचाने अति धमचक्क॥
कृत्य मांगलिक, नृत्य मांगलिक, पाणिग्रहण के अवसर पर।
गान मांगलिक स्थान मागलिक, पान मागलिक करता घर॥
तिलक मागलिक सूत्र मांगलिक, रंग मांगलिक चारो ओर।
शब्द मांगलिक चित्तमागलिक, मंगल ने पकड़ा अतिजोर॥
जाति देश कुल परंपरागत, वैवाहिक विधि की सपन्न।
जिसमें नही उचितता होती, वही प्रेम रहता प्रच्छन्न॥

दिया दहेज हेज से गिनती, आती है निन्यानव कोड़ ।
संख्या-भार अल्प था सबका, मूल्य अधिक देखा जब जोड ।।
एक साथ में एक हाथ में, गए थमाए आठो हाथ ।
आठों साथ रही इतने दिन, और रहेंगी आठों साथ ।।

माता-पिता की ओर से

हुई विदो की वेला जब सब, गद्गद् होकर बोले लोग ।
था इतने ही दिन का देखो, अपने घर रहने का योग ।।
श्वसुरालय पर जाकर बेटी !, भूल न जाना पीहर को ।
जब वे भेजे हम बुलवाएँ, तब-तब आना पीहर को ।।
शोभा दिलवाओगी हमको, तुम भी शोभा पाओगी ।
दिल न हमारा सुख पायेगा, जो तुम रोती आओगी ।।
कुल की रीति निभाने में ही, श्वसुरालय का रहता मान ।
कभी नही दिखलाना देखो, अपना अहम् तथा अज्ञान ।।
सुख से सहना सुख से कहना, सुख से रहना सबके साथ ।
सुख पाने की विधियाँ निधियाँ, होती है अपने ही हाथ ।।

सखियों की ओर से

सखियॉ अखियाँ भर कर बोली, कभी हमें भी करना याद ।
विस्मृति योग्य नही होता है, बाल्यकाल का मधुरास्वाद ।।
पति के इंगित आकारो पर, न्योछावर हो जाना जी ।
हम न, हमारी इच्छाएँ है, अहंमूल खो जाना जी ।।
पति को समझाकर कर लेना, अपनी इच्छा के अनुकूल ।
साथ साथ संयम लेने की, कहीं नही कर देना भूल ।।

रूप-रंग-लावण्य का , इम्तिहान है आज ।
रख लेना चातुर्य की, चतुराई से लाज ।।

अपना घर

जम्बू अपने घर पर आया, अष्ट रमणियाँ लेकर के ।
मानो अष्ट सिद्धियाँ लाया, हाथ हृदय से देकर के ।।
माता रही उतार आरती, सुत को अन्दर लेने को ।
पुत्र सहित अपनी वधुओ को, शुभ आशीषे देने को ।।
जियो, फलो, फूलो, सुख देखो, रहो सदा सौभाग्य अखंड ।
भुगताया न किसी को तुमने, किसी जन्म मे कभी त्रिदड ।।
रति रतिपति सा, शचि शचिपति सी, जोडी विरली मिलती है ।
जन्म जन्म कृत उग्र तपस्या, कालान्तर से फलती है ।।
रूप एक सम रग एक सम, ढंग एक सम आठों का ।
विधि विद्यार्थी ने कर डाला, पुनरुच्चारण पाठो का ।।
कौन बडी छोटी है इनमे, सहसा कम होती पहचान ।
स्पष्ट चिन्ह के बिना कभी भी, सत्य न ज्यो होता अनुमान ।।
मै क्यो बाधक बनू मिलन मे, मित्र[1] गया उठ अपने घर ।
क्यो न दिया जाता मिलने का, नये प्रेमियो को अवसर ।।
चन्द्र रश्मियाँ लगी झाकने, खुले झरोखो से खुलकर ।
खो देती अस्तित्व चन्द्रिका, धवल शयनगृह सह घुलकर ।।
हार मनाने को ये सारी, हार पहनकर आई है ।
अथवा हार दिखाकर कहती, हमने हार न खाई है ।।
इतने दिन तक रखा हृदय में, आज वही जम्बू का चित्र ।
मढ़ा हार मे स्पष्ट दीखता, करता जीवन-प्रेम पवित्र ।।
पुष्प सुगधित अनुबंधित हो, कहते खुलकर हँसने को ।
अनुमोदित ये कभी न करते, अलि सम जग मे फँसने को ।।

---

१ सूर्य ।

पवन प्रेरणा देता मानो, रुको न विषयावासों में ।
रुककर हमने क्या सुख पाया, प्राणिमात्र के श्वासों में ।।
दीपस्तंभ पर सजे दीप की, शिखा इशारा करती है ।
जम्बू कोई शलभ नही है, आप व्यर्थ ही मरती है ।।
सजी हुई सुमनों की शय्या, कहती तुम क्या सोवोगी ।
प्राय: होते ही पति के सह, सभी साध्वियाँ होवोगी ।।
जम्बू के चरणो में आठों, हुई समर्पित तन-मन से ।
मानो मिलने को उत्सुक है, स्त्री-यौवन नर-यौवन से ।।
अपने अपने भद्रासन पर, बैठी सारी सजधज कर ।
नही किसी ने टाइम देखा, कितने मिनिट हुए बजकर ।।
ओ प्राणेश्वर पान लीजिए, सुनिये हम गाये गाना ।
आप बजाएँ हम मिल नाचे, मिल खाये पहला खाना ।।
पहली रात बात भी पहली, पहला पहला अपना साथ ।
आज सभी हम मिलकर देखे, पहला पहला सपना साथ ।।
आप हमारे प्यारे हो हम, सब भी आपकी प्यारी है ।
रूठो नही हमारे से बस, आरति अभी उतारी है ।।
खोलो हृदय हृदय से बोलो, घोलो रस श्रृंगार नया ।
नही पुराना पड सकता है, नया रहेगा प्यार नया ।।
कहो हमारी इच्छाओ का, कुछ आदर सम्मान नही ।
इतना कहा सुना पर अब तक, दिया आपने ध्यान नही ।।

निराशा और नींद

हाव भाव विभ्रम चेष्टाएँ, कर कर हार गई सारी ।
जम्बू वश में हो ही जाता, होती यदि हम भी नारी ।।
नर पर असर हुआ करता है, स्त्री के हावों भावो का ।
प्रत्युत्तर न मिला जम्बू से, अपने खेले दावो का ।।

नही बोलता नही डोलता, नहीं खोलता है आँखें।
जीवित होने पर पक्षी की, हिल ही जाती है पांखे॥
जीवित-मृत जम्बू का जीवन, योगीश्वर से बढ़ा चढ़ा।
नही किसी ने पढ़ा पाठ वह हमने मिलकर अभी पढ़ा॥
चलो, उठो, सो जावो, त्यागो, आशाएँ अपने मन की।
यौवन की परवाह करे क्या, जब परवाह न जीवन की॥
अपने पर्यंको पर सारी, हारी थकी हुई सोई।
पूर्ण विफलताएँ पाने पर, क्या उत्साहित हो कोई॥

जम्बू की जागृति

जम्बू रहा अकेला केवल, रात्रि रही है उसके पास।
अंधेरे में भी मिल जाता, आत्मज्ञान का अधिक उजास॥
इन आठो के सम्मुख मैं, दृढ़ रह पाया मन संयम में।
इनने कमी न छोड़ी कोई, मुझे डिगाने के श्रम में॥
ये बेचारी भोली-भाली, इन्हें पता क्या संयम का।
पड़ा हुआ इनकी आत्मा पर, विकल आवरण विभ्रम का॥
उठते यौवन धन पर इनके, मन में है अभिमान बड़ा।
इन्हे पता क्या ? देह अशुचि का, भरा हुआ है एक घड़ा॥
विषय भोग के परिणामों से, अभी अपरिचित है सारी।
मुझे जीतने को आई थी, स्वयं स्वय से ही हारी॥
जागेगी जब आत्मा इनकी, मांगेगी मुझ से माफी।
पश्चात्ताप तथा माफी भी, लिए प्रगति के है काफी॥

प्रभव का आगमन

प्रभव चोर चोरों को लेकर, आया चोरी करने को।
दान दहेज मिला जम्बू को, उसे आज अपहरने को॥
अवस्वापिनी से दे निद्रा, उद्घाटिनी चलाता है।
अब न किसी का भय है इसको, पडा हुआ धन पाता है॥

चोर पांच सौ साथी मिलकर, लगे उठाने सारा माल ।
चुरा न पायेंगे धन इसका, किसको आता कहो खयाल ।।

एक चमत्कार

जम्बू ने सोचा चोरों का, मैं न सामना कर पाता ।
इसका आशय यह न निकलता, मैं इनसे मन डर खाता ।।
चोर सफल यदि हुए आज तो, फैलेगी ऐसी अफवाह ।
बेचारा लुट गया अत: ली, घर तजकर संयम की राह ।।
महामंत्र नवकार मंत्र का, स्मरण किया शुभ भावो से ।
इसके आराधक न अपरिचित, निज अनुभूत प्रभावों से ।।
शासन देवी ने चोरों के, चिपका डाले पैर वहीं ।
प्रभावना शासन की करना, इनसे कोई वैर नही ।।

प्रभव का आश्चर्य

देख रहे हो खड़े-खड़े क्या, चलो बीत जायेगी रात ।
तुरत प्रभात तथा घर-घर में, फैलेगी चोरी की बात ।।
बोले चोर प्रभव से ऐसे, चले चला जाये तब न ?।
एक स्थान से स्थान दूसरे, हिले हिला जाए तब न ?।।
धन की पोटे रखे हुए सिर, खड़े वही के वही सभी ।
ऐसी घटना सुनी न देखी, समझी जानी पढ़ी कभी ।।
एक प्रभव ही खुला रहा है, खुला रहा है जम्बू एक ।
खुले दिमाग हृदय में ही तो, उपजा करता धर्म-विवेक ।।

जम्बू के सामने

अत्याश्चर्य मग्न हो तस्कर, शयनालय की ओर बढा ।
ध्यानमग्न जम्बू को पाकर, सोचा इसने मंत्र पढा ।।
सीखूं इससे मंत्र नया मैं, जो स्तभन करने वाला ।
कब विद्या पा सकता भाई, झुकने से डरने वाला ।।

नम्र निवेदन करता बोला, मुझे दीजिए स्तंभन मंत्र ।
लेना चाहो लो बदले में, चिर अनुभूत यंत्र या तंत्र ॥
धन से विनय भाव से विद्या, विद्या से ही पाई जाती ।
जो दी जाए नहीं वही फिर, उदही से खाई जाती ॥
धन पाने के स्थान बहुत है, लिए ज्ञान के स्थान नही ।
प्राप्त ज्ञान का प्राप्त द्रव्य का, मुझे जरा अभिमान नही ॥
परिचय-पत्र प्राप्त करलो, लो, मै हूँ चोर प्रभव नामी ।
जिसको पकड़ न पाए अब तक, श्रेणिक या कोणिक स्वामी ॥
हम सब मारे जाएँगे जो, आप न हमको छोड़ोगे ।
दया धर्म के परम पुजारी, दुःख न हमारा तोडोगे ?॥

जम्बू का जवाब

सुनकर प्रभव-विनय जम्बू ने, खोला अपना ध्यान भला ।
किसने कहा मुझे आता है, स्तम्भन कर्त्ता ज्ञान भला ॥
लेनी नही मुझे विद्याएँ, लेना है मुझको संयम ।
मैंने नही किसी को बाँधा, तोडो मिथ्या मन का भ्रम ॥
केवल इतना ही सोचा था, धन तस्कर ले जायेगे ।
होने वाली दीक्षा को भी, ये बदनाम बनायेगे ॥
महामंत्र नवकार जपा था, उसका समझो सकल प्रभाव ।
लो सीखो सिखला दूँ, छोड़ो, पडा हुआ यह बुरा स्वभाव ॥
मानवता-धन सच्चा धन है, अन्य सभी धन साधन है ।
चोरी करके धन लाना क्या, माना धर्माराधन है ॥
शक्ति लगा दो शुभ कार्यों में, भक्ति करो श्री जिनवर की ।
उचित किसी भी तरह नही है, वृत्ति भयंकर तस्कर की ॥
एक आपके इंगित पर ये, सारे साथी सुधरेंगे ।
नौका पार उतर जाने पर, यात्री सारे उतरेंगे ॥

साथी क्या परभव के साथी ?, साथी है क्या धन माया ?।
यह साथी कहलाने वाली, साथी नहीं स्वयं काया ।।
समझ रहे हो स्वयं सभी कुछ, क्या आवश्यक समझाना ।
मात्र प्रसंगोपात्त यहां पर, कहना फर्ज गया माना ।।

प्रभव का चिन्तन

प्रभव सोचने लगा स्वयं अब, जम्बू का समझाना सत्य ।
वैद्य दवा देकर के भी क्या, सूचित नही करेगा पथ्य ।।
मरना तो निश्चित है सबको, आज नही तो कल मानो ।
धन दौलत भी साथ न जाती, इसको भी मत छल जानो ।।
फिर सोचा मुझको छलने हित, देते हो उपदेश कही ?।
जनरजन हित लीलाओं में, जन लेते क्या वेष नही ?।।
परखूं पलटू मेरे मन को, इसमें क्या आपत्ति कही ।
एक और दो तीन तीन भी, क्या लेते मुनि दत्ति नही ?।।

प्रभव के विचार

बोला प्रभव सुनो जम्बू क्यों, यौवन मे लेते सयम ।
ढल जाए जब उम्र शांति से, अपनाना रस शान्त परम ।।
वृद्ध पिता-माता की सेवा, करना सुत का प्रथमाचार ।
स्वय जनक बन अपने पीछे, पुत्र छोडना कुल आधार ।।
सुत के बिना स्वर्ग का पाना, माना जाता सरल नही ।
शुभ उद्देश्यो से संसेवित, विषय-गरल भी गरल नही ।।
बचपन और बुढापा परवश, स्ववश मात्र है यौवन-काल ।
सदुपयोग इसका जो करता, वही विचक्षण विज्ञ विशाल ।।
रोगरहित तन, रोकरहित धन, शोकरहित मन करता भोग ।
आप सरीखे भाग्यवान को, मिलते सारे शुभ संयोग ।।
जब न भोग का समय समय वह, लिए योग के उपयोगी ।
बालक, वृद्ध, वियोगी, रोगी, बिना बनाए है योगी ।।

जग की परम्परा को परखो, परखो प्रीति प्रियाओं की ।
नही सुगमता मानो इतनी, उत्तम योगक्रियाओ की ॥

मधुबिन्दु का उदाहरण

बोले जम्बू विषयो के सुख सुख वाले है दुःख महान ।
छोटा सा दू उदाहरण मैं, देना इस पर किंचित ध्यान ॥
एक मुसाफिर साथ छोडकर, भटक गया था जंगल में ।
पड़ा जंगली हाथी पीछे, मंगल कहां अमगल में ॥
बरगद का लाख पेड सामने, चढा दौड़कर उस पर नर ।
हाथी लगा हिलाने उसको, जोर लगाकर इधर-उधर ॥
गिरा मुसाफिर तरुवर का कर, कर मे पाकर लटक गया ।
नीचे कूआं उसमें फणधर, देख सास कुछ अटक गया ॥
शाखा काट रहे ऊपर से, कृष्ण श्वेत दो चूहे मिल ।
शहद मक्खियो के छत्ते ने, प्रश्न बनाया और जटिल ॥
हिली टहनियाँ उड़ी मक्खियाँ, लगी काटने उसका तन ।
जाए किधर जिए भी कैसे, दिखता चारो तर्फ मरन ॥
मधुमक्खी के छत्ते मे से, लगे टपकने मधु-बिन्दु ।
उसके मुख में गिरते सीधे, लगते उसको वे सुख-सिन्धु ॥
कूआ भूला, हाथी भूला, भूला चूहे, ऊपर के ।
भूला मधुमक्खी के चटके, भूला दुख जीवन-भर के ॥
मान रहा सुख चख मधुबूदे, मुख ऊपर कर ऊपर नैन ।
इतने में विद्याधर कोई, निकला उधर मनाता चैन ॥

दयापात्र पर दया

विकट परिस्थिति देख निकट आ, बोला मर जाएँगे आप ।
कहाँ फँसे हो, कहाँ धँसे हो, यहाँ भोगने कोई पाप ॥
निकलो, तुम्हे निकालू आओ, मेरे साथ विमान खड़ा ।
प्रान बचाने को मैं आया, पाया भाग्य विधान बड़ा ॥

भयंकर भूल

सुनकर बोला सुखी मुसाफिर, एक बूंद यह आती है ।
मधु की महा मधुरिमा मन को, महाशांति पहुँचाती है ॥
यह आती है, वह आती है, अभी जाइये आप भला ।
मधु की बूंदे ठुकराकर के, जाता मुझसे कब निकला ॥
आओगे जब आप लौटकर, साथ मुझे लेते जाना ।
आना नही अभी कहने का, धन्यवाद जाए माना ॥
विद्याधर ने मूर्ख मानकर, कहा दुबारा चलो चलो ।
निकलो महाकाल के मुख से, मधु बूँदों से टलो-टलो ॥
सुनता नही स्वाद का भूखा, मरा वही वह पीछे से ।
ऊपर से शाखा कटते ही, लपके अजगर नीचे से ॥
बचने का अवसर पाकर भी, निकल न पाया लोभी नर ।
इस उपनय को ढाला जाता, विषय लालची दुनिया पर ॥

आशय यह है

मृत्यु रूप गजराज, आयु की, शाखा पर नर लटका है ।
रात दिवस दो चूहों का भी, सारे जग को खटका है ॥
गतियाँ चार चार फणधर सम, विषय-वासना मधु की बूँद ।
दुख को सुख कहकर सहता है, विषयी नर निज आखे मूद ॥
विद्याधर सद्गुरु समझाते, धर्म विमान खड़ा करके ।
लोभी नर न निकल पाते है, बाते बडी अडा करके ॥

बोध के बीज

रोको मत संयम से मुझको, प्रभव आप भी लो सयम ।
नही भोग का किन्तु त्याग का, उदाहरण रख देगे हम ॥
मात-पिता के रिश्ते-नाते, कितने जुड़े तथा टूटे ।
सदा जोड़ते जाएँगे तो, नही कभी भी ये छूटे ॥

जग की परम्परा को परखो, परखो प्रीति प्रियाओं की ।
नही सुगमता मानो इतनी, उत्तम योगक्रियाओं की ।।

मधुबिन्दु का उदाहरण

बोले जम्बू विषयों के सुख सुख वाले है दुःख महान ।
छोटा सा दू उदाहरण मैं, देना इस पर किंचित ध्यान ।।
एक मुसाफिर साथ छोडकर, भटक गया था जंगल मे ।
पडा जगली हाथी पीछे, मंगल कहां अमगल में ।।
बरगद का लाख पेड सामने, चढा दौडकर उस पर नर ।
हाथी लगा हिलाने उसको, जोर लगाकर इधर-उधर ।।
गिरा मुसाफिर तरुवर का कर, कर में पाकर लटक गया ।
नीचे कूआं उसमें फणधर, देख सांस कुछ अटक गया ।।
शाखा काट रहे ऊपर से, कृष्ण श्वेत दो चूहे मिल ।
शहद मक्खियो के छत्ते ने, प्रश्न बनाया और जटिल ।।
हिली टहनियाँ उडी मक्खियाँ, लगी काटने उसका तन ।
जाए किधर जिए भी कैसे, दिखता चारो तर्फ मरन ।।
मधुमक्खी के छत्ते मे से, लगे टपकने मधु-बिन्दु ।
उसके मुख में गिरते सीधे, लगते उसको वे सुख-सिन्धु ।।
कूआ भूला, हाथी भूला, भूला चूहे, ऊपर के ।
भूला मधुमक्खी के चटके, भूला दुख जीवन-भर के ।।
मान रहा सुख चख मधुबूदे, मुख ऊपर कर ऊपर नैन ।
इतने में विद्याधर कोई, निकला उधर मनाता चैन ।।

दयापात्र पर दया

विकट परिस्थिति देख निकट आ, बोला मर जाएँगे आप ।
कहाँ फँसे हो, कहाँ धँसे हो, यहाँ भोगने कोई पाप ।।
निकलो, तुम्हे निकालूं आओ, मेरे साथ विमान खडा ।
प्रान बचाने को मैं आया, पाया भाग्य विधान बड़ा ।।

चोर सभी पहरा देते है, खड़े खड़े जम्बू के घर ।
चोरो की आतमा पर देखो, अजब गजब का पड़ा असर ॥

स्तंभ समाप्ति

पुष्कर पंचम स्तंभ ने, जगा दिया वैराग्य ।
एक साथ सोया हुआ, जाग उठा है भाग्य ॥
पावनता की प्रेरणा, देता पंचम स्तभ ।
पावन रहने को यथा, कहता पावन अंभ ॥
भोग कठिन सयम सरल, सीधी सच्ची बात ।
रात न यह सोहाग की, है सयम की रात ॥
जगना बाकी है अभी, जम्बू का परिवार ।
पुष्कर षष्ठम स्तभ भी, देगा नये विचार ॥
पुष्कर पाठकगण ग्रहण, करना केवल क्षीर ।
नीर देखकर हसजन, होते नहीं अधीर ॥
कृपा दृष्टि गुरुदेव की, करती सुख की सृष्टि ।
सृष्टि मात्र को सुखकरो, होती ज्यो घनवृष्टि ॥

षष्ठम स्तम्भ

दोहे

षष्ठमव्रत सम श्रेष्ठतम, पुष्कर षष्ठम स्तंभ ।
दूर हटाता दृष्टि से, भोग राग का दभ ॥
उठकर आठो रमणियाँ, करती और प्रयास ।
पुष्कर अपने आप पर, रखते सब विश्वास ॥
एक एक कर आ रही, रखने अपनी उक्ति ।
भोग सिद्ध करती हुई, सिद्ध न करती मुक्ति ॥
अनुमोदन करने लगी, सातो मिलकर साथ ।
प्रभव देखते ही रहे, रहे अकेले नाथ ॥

समुद्रश्री के विचार

सोये नही आप सुखपूर्वक, हम सब सोईं इतनी देर ।
सयम लेना सयम लेना, लगा रहे हो केवल टेर ॥
दोष हमारा बतला करके, आप छोड़कर जा सकते ।
निरदोषी को ठुकराने से, कभी शांति क्या पा सकते ॥
उठते यौवन की रक्षा में, देख स्वय को अति असमर्थ ।
आज नही कल बतलाओगे, संयममय जीवन है व्यर्थ ॥
गोदी वाले को सभालो, प्यार करो पालो पोसो ।
आश उदरवाले की छोड़ो, पीछे भाग्य नही कोसो ॥
एक कृषक बक पछताया था, गुड-मडक की आशा में ।
ऐसे ही प्रिय पछतावोगे, सयम की अभिलाषा में ॥

कहा प्रभव ने कथा सुनाओ, श्री जम्बू रुक जायेंगे।
नही रुकेंगे तो भी इनके, भाव स्पष्टता पायेंगे॥

बक की कथा

मारवाड़ में था कही, रहता एक किसान।
कृषि प्रधान जीवन सदा, देता शांति महान॥
कांग और कोद्रव युगल, निपजाता वह धान।
जीवन यापन के लिए, था इसका ही ज्ञान॥

एक बार श्वसुरालय में जा, ताजा गुड-मडक खाये।
उसने ऐसे कभी न खाये, मन को बहुत बहुत भाये॥
पूछा यह क्या वस्तु बताओ, विधि विधिवत निपजाने की।
अपने ही जन से कब होती, कोई बात छिपाने की॥
इक्षु दड से रस, रस से गुड, बनने की विधि बतलाई।
गेहूँ उपजा कर आटा कर, बात शांति से समझाई॥
घर आते ही उसने अपने, पके खेत को दिया उजाड।
सुत नारी के ना करने पर, करने लगा लडाई राड़॥
गेहूँ ईख उगाने के हित, सारा खेत किया खाली।
उसे सीचने को अब कूआ, लगा खोदने दे ताली॥
गहरा गहरा खोदा लेकिन, निकला कही नही पानी।
हास्य पात्र बन गया मूर्ख वह, देख स्वयं की नादानी॥
गुड़-मडक की आशा में सब, कोद्रव-कांग गवा डाले।
पछताओगे हमें छोडकर, सयम व्रत लेने वाले॥
हम न मिलेगी फिर से सयम-मे न मिलेगा जब कुछ सार।
पहले ही से आप कीजिए, प्रेमपूर्ण व्यवहार विचार॥

जम्बू का जवाब

मुझे लालसा नही जरा भी, मैं कैसे पछताऊगा।
तृष्णा मोह जीतकर विजयी, बन करके सुख पाऊगा॥

जिसे वासना हो भोगों की, वह कौवे सम पछताता ।
सुनिये वह दृष्टान्त आपको, पहले से ही हो आता ॥

कौवे की कथा

सरिता तट पर एक द्विरद का, पडा कलेवर बहुत बड़ा ।
देता था दुर्गन्ध दूर तक, सड़ जाता शव पडा-पडा ॥
शव के इर्द-गिर्द उड़ते है, मांसाहारी कौवे चील ।
गीधो को आने की बोलो, करता कोई कहाँ अपील ॥
घुसने और निकलने के हित, छिद्र पूछ के पास किया ।
कौवो ने अन्दर जाने का, पूर्णतया अभ्यास किया ॥
खाकर मास निकलते कौवे, कौवा एक रहा भीतर ।
मासलोलुपी कभी नही वह, निकला गजशव से बाहर ॥
गर्मी से वह सूखा चमडा, सिकुड़ गया अब छेद बडा ।
फिर भी लोभी कौवे के मन, कभी न आया खेद बड़ा ॥
वर्षा ऋतु के समय लाश वह, बहती गई समंदर मे ।
फूली लाश सलिल से ऐसी, पाकर पानी अन्दर मे ॥
छेद बड़ा होने से कौवा, बाहर आ अब देख रहा ।
चारो ओर दूर तक पानी, उड़ने का न विवेक रहा ॥
उडकर जाता अन्त न पाता, आता उसी द्विरद के पास ।
सोच रहा है निकट आ गया, मेरा जल के मध्य विनाश ॥
इतने ही में दिया दिखाई, आता हुआ दूर से पोत ।
सोचा इसके शिखर बैठकर, टाल सकूंगा अपनी मौत ॥
है यह अभी दूर जब यह, आयेगा तब जाऊँगा ।
इतनी देर बैठकर अन्दर, मांस प्रेम से खाऊगा ॥
गया उदर मे इधर काक जब, निकल गया वह पोत महान ।
मांसलोलुपी कौवे का यों, आया निकट स्वत: अवसान ॥

मगरमच्छ ने डुबो दिया शव, कौवा उडा, न पाया अन्त ।
साँस फूलने से कौवे के , प्राणों का बस आया अन्त ।।
विषय-माँस पर कौवे सम जो, लोभ दिखायेंगे अपना ।
उन्हे पुनः जीवन का, सुख का, कभी न आयेगा सपना ।।

समुद्रश्री की पराजय

पहली वनिता बनी निरुत्तर, भोगो से मन मोड चुकी ।
पति को समझाने का आग्रह, पूर्ण प्रेम से छोड़ चुकी ।।
जा बैठी है एक किनारे, हुई सहारे सयम के ।
प्रश्नोत्तरी हो रही देख लो, भोग-त्याग की अब जम के ।।

पद्मश्री का प्रयत्न

उठी पद्मश्री बड़े प्रेम से, पति-पाँवों में किया प्रणाम ।
प्राप्त भोग को ठुकराने का, नही सयानेपन का काम ।।
एक नहीं हम आठ-आठ है, सेवा मे प्रस्तुत दिन - रात ।
सूझ रही है कैसे प्रियतम, संयम अपनाने की बात ।।
"लोभी बन्दर" पछताया ज्यों, पछतावोगे आखिर आप ।
भरी हुई थाली को ठोकर, मार करो मत मोटा पाप ।।

जम्बू की जिज्ञासा

कहो कहानी बन्दर की हम, उसका स्वागत करते है ।
लोककथा शेवधि को विधि से, हम सब मिलकर भरते है ।।

बन्दर की कथा

सुन्दरवन मे एक वावडी, उसके तट पर तरुवर एक ।
जल को शीतल रखने को, प्रण लिए खड़ा वह तज अविवेक ।।
बन्दर और बन्दरी का भी, जोड़ा एक वही रहता ।
हमको सुख है हमको दुःख है, कौन भला किससे कहता ।।
मधुर फलों पर जीवन जीते, पीते शीतल शीतल नीर ।
पलट रही है आज अचानक, इन दोनों की ही तकदीर ।।

इस डाली से उस डाली पर, उछल-कूद करते दिन रात ।
बन्दर ने कब सीखा बोलो, बैठे कही शांति के साथ ।।
चूका फाल गिरा बन्दर वह, गहन वावडी के जल में ।
बन्दर से मानव बन करके, बाहर अब आया पल में ।।

बन्दरी से नारी

देख रही है खड़ी बन्दरी, बन्दर मानव बना भला ।
इस पानी में परिवर्तन की, पाई जाती श्रेष्ठ कला ।।
गिरी बन्दरी बनी सुन्दरी, जोडी का मन फूल गया ।
पशु-जीवन के दुःख आज वह, भली भांति से भूल गया ।।
देव और देवी सम दोनो, वन मे आज विचरते है ।
पशु पक्षी वनवासी इनकी, गतिविधि से कुछ डरते है ।।

बन्दर का लोभ

बन्दर बोला मानव से मै, देव बनूँगा फिर गिरकर ।
नारी बोली लोभ करो मत, करो प्राप्त सुख का आदर ।।
जाते बनने देव कही पर, बन जावोगे फिर वानर ।
मानव जीवन के सुख देखो, सुनो निवेदन यह सादर ।।
नही नही तू भोली है, मैं बनकर देव दिखाऊँगा ।
तू खुद भी ललचा जायेगी, जब मै सम्मुख आऊँगा ।।
हठकर गिरा वावड़ी मे वह, मानव से कपि बना तुरत ।
कहा बन्दरी ने अब हँसकर, आया अधिक लोभ का अन्त ।।

तू भी बन्दरी बन जा

बोला बन्दर तू भी गिरकर, पुनः बन्दरी बनजा अे ! ।
इतने दिन तक साथ रहे अब, फिर से साथ निभा आ अे ! ।।
ऐसी भूल नही कर सकती, देख तुम्हारी भूल बड़ी ।
नर से निर्जर बन जाने की, इच्छा जब प्रतिकूल पड़ी ।।

दोनो अलग हो गये देखो, एक सुन्दरी बन्दर एक ।
बन्दर रोने लगा रात-दिन, भूल भयंकर अपनी देख ।।
आया एक मदारी वन में, पकड ले गया वानर को ।
करता क्या न वही आखिर जो, करना होता ईश्वर को ।।
आया भूपति एक इधर से, गया सुन्दरी को ले साथ ।
सोचा वन में शून्य पड़ा था, लगा रूप-धन मेरे हाथ ।।
रानी बनी महल में जाकर, दिया भाग्य ने कैसा साथ ।
बन्दर कैसे पहचानेगा, रानी जी के सुख की बात ।।

बन्दर के खेल

बन्दर ने अब नृत्यकला में, प्रवीणताएँ करली प्राप्त ।
इतने ही से कष्ट कथा-क्या, हो जायेगी यहाँ समाप्त ।।
खेल दिखाता हुआ मदारी, आया उसी शहर मे अब ।
बन्दर के खेलो में अचिरुचि, लोग दिखाया करते सब ।।
कागज के टुकडो पर लिखकर, रखे गए लोगो के नाम ।
नाम एक का देकर बोले, लाओ दिखलाओ निज काम ।।
सही नाम का टुकडा बन्दर, लाकर खेल दिखाता है ।
खेल देखने वालो के मन, बड़ा अचम्भा आता है ।।
जिसका नाम लिया अब उसका, नाम नही था कागज पर ।
बन्दर उठकर गया न लेने, बैठा रहा वही जमकर ।।
लाला वस्तुपालजी आये, जाओ उनको करो सलाम ।
जेब कौन सी में है पैसे, संभालो लो स्वयं इनाम ।।
छूए पैर जेब भी छूई, पैसों वाली हाथो से ।
कैसे अचरज हुआ न करता, बन्दर की इन बातो से ।।
आया जो न खेल मे उसका, नाम दिया अब वानर को ।
गया न उठकर उसे ढूढने, नही देखता ऊपर को ।।

मालिक बोला देखो उठकर, शायद वे आये भी हों।
तेरे लिए मिठाई पैसे, देने को लाये भी हो॥
उठा नही वानर फिर भी तब, कहा मदारी ने ऐसे।
मेरे प्यारे वानर ने यह, जान लिया बोलो कैसे ?॥
प्यारे सेठो ? नोट निकालो, थाली फेरी जाती है।
देते सभी खुशी से बढ़कर, वारी जिसकी आती है॥

राजसभा का आमंत्रण

बन्दर है या कोई जादू, शोभा फैल गई पुर में।
पुर की बाते पहुँचा करती, भूपति के अन्तःपुर में॥
राजसभा में खेल दिखाने, आमत्रण आया सादर।
कौन नही हर्षित होता है, पैसा या इज्जत पाकर॥
राजा बैठे रानी बैठी, बैठे राजसभा के लोग।
सभी देखना चाह रहे है, बन्दर के ये नये प्रयोग॥
नमस्कार कर नरवर को अब, उठा मदारी खीची डोर।
लेकिन वानर उठा नही है, बहुत लगाने पर भी जोर॥
गडा शर्म से आज मदारी, पाया कुछ भी भेद नही।
हृदय देख लेने को कोई, रखा गया भी छेद नही॥
शिशु हठ, स्त्री हठ, नृप हठ जैसा, दृढ़ हठ ले बैठा वानर।
सभी उपस्थित जन कहते है, छेडो मत छिडने पर डर॥
पशु आखिर पशु ही होता है, भले पढ़ाया गया इसे।
एवरेस्ट की चोटी पर धर, हाथ चढ़ाया गया किसे ?॥
सभव है राजी हो जाए, दिखलायेगा खेल अभी।
जल जाएगा दीपक देखो, पडा हुआ है तेल अभी॥

वन्दर का रुदन

रोता दिया दिखाई वन्दर, झर-झर आँसू झरते है।
इसके ऐसे रोने पर सब, मन में अचरज करते है॥

किसे दिखायें ? किसे बुलायें, जो बतलाये मन का दर्द ।
मन का दर्द सहा कब जाता, कोई कितना ही हो मर्द ॥
पर-पीड़ा को क्रीड़ा कहना, क्रीड़ा की क्या बात नही ।
चिड़ा चिड़चिडा बन जाता है, चिडिया हो जब साथ नहीं ॥

रुदन का समाधान

रानी को पहचाना इसने, वही बन्दरी यह मेरी ।
लोभ नही करता तो होती, आज सुन्दरी यह मेरी ॥
उस दुर्मति पर इस दुर्गति पर, रोना ही तो आयेगा ;
रोये बिना हृदय से बोलो, कभी रहा क्या जायेगा ॥
रानी ने भी पहचाना है, यह बन्दर वह बन्दर है ।
रोता मुझे देखकर, स्मृतियाँ, उभरी मन के अन्दर है ॥
रानी उठी निकट कपि को ले, कही कान में सारी बात ।
अब रोने से क्या होता है, है क्या बात तुम्हारे हाथ ॥
जाओ खेल दिखाओ, भूलो, याद करो मत वह जीवन ।
तुम्हें देखने को उत्सुक है, आज समूचा राज-भवन ॥
बन्दर मान गया कहने से, बन्द किया रोना-धोना ।
सोचा कभी हो गया वह तो, जिसे समय पर था होना ॥
खेल दिखाये ऐसे जैसे, पहले देखे नहीं कभी ।
केवल राजा-रानी ही क्या, हर्षित-मन है लोग सभी ॥

बन्दर की मुक्ति

राजा रानी ने अब ऐसे, कहा मदारी से मन-खोल ।
इस बन्दर को छुडवा दे हम, क्या इच्छा है तेरी बोल ॥
वन में खुश मन में खुश होगा, फल खाकर पी निर्झर-नीर ।
इतने दिन तक रखा बांधकर, तेरा इसका इतना सीर ॥
तेरी रोजी-रोटी की हम, पहले चिन्ता करते है ।
हीरो पन्नो रत्नो से ले, तेरी झोली भरते हैं ॥

खुलवाकर बन्धन वानर के, राजाजी ने यश पाया ।
कपि ने और मदारी ने भी, दया धर्म का गुन गाया ॥
रानी से पूछा राजा ने, बन्दर को क्या बात कही ।
तेरे कहने से वह नाचा, यही राज की बात रही ॥
रानी ने सब भेद बताया, राजा ने अचरज पाया ।
कथा पूर्ति पर श्री जम्बू के, सम्मुख प्रश्न उभर आया ॥

भोग का समर्थन

पछताया था बन्दर जैसे, पछतावोगे आप भला ।
मोक्ष सुखों की आशा मे हम, सबका घोटो नही गला ॥
प्रिय ! अतिप्रिय है आप हमें, तब अहित चाहती हम कैसे ।
अप्रिय होते अगर रात्रिभर, करती हम यह श्रम कैसे ॥

जम्बू का जवाब

जम्बू बोले सुनो पद्मश्री, मुझे नही है विषयाशा ।
एक तमाशा मानो जग को, पलटो चिन्तन का पाशा ॥
नर सुख हो या निर्जर सुख हो, विषयजन्य सुख जहर समान ।
विषयमुक्ति की आकांक्षा हो, संयम का सुख गिनो महान ॥
मानव-भव है चिन्तामणि सम, खोने पर फिर मिलता क्या ।
जो सुमनस गिर गया भूमि पर, वह टहनी पर खिलता क्या ?॥
पुण्यसार भी पछताया था, चिन्तामणि को खो करके ।
सरस कहानी तुम्हे सुनाऊँ, सुनो एकरस होकर के ॥

पुण्यसार की कथा

पुण्यसार नर एक नाम से, पापसार था किस्मत से ।
दुःख ही दुःख उठाया जिसने, इसीलिए इति तक अथ से ॥
माता-पिता मरे वचपन में, नानाजी के पास पला ।
पुण्यहीन जन कव पा सकते, ऊँची शिक्षा-ज्ञान-कला ॥

नानाजी भी थे साधारण, करते थे केवल पालन ।
कैसे इसकी दरिद्रता का, वे कर पाते प्रक्षालन ।।
किसी योग्य कन्या से इसका, पाणिग्रहण कर डाला था ।
ब्याह इन्होंने ही करना था, क्योंकि इन्होंने पाला था ।।
धैर्य बुद्धि बल नही बढ़ा था, देखा काम न कही बड़ा ।
कूए का मेढक कूए में, रहता है चुप-चाप पडा ।।

एक प्रतिज्ञा

मित्रमंडली इसकी बैठी, इक दिन बाते करती है ।
घिरी समुद्रों द्वारा अपनी, कितनी छोटी धरती है ।।
सिन्धु समुद्र आपपति अर्णव, नाम उसी का रत्नाकर ।
अकूपार अम्भोनिधि जलनिधि, अथवा सरितापति सागर ।।
पुण्यसार ने सुनकर सोचा, रत्नाकर में होते रत्न ।
उसे उलीच उलीच रत्न वे, पाने का मैं करूँ प्रयत्न ।।
सबके सम्मुख बोल उठा, मणि रत्नाकर से पाऊँगा ।
फैंक फैंककर पानी बाहर, सागर स्वयं सुखाऊँगा ।।
हँसे मित्र सब एक मित्र की, देख प्रतिज्ञा बड़ी विचित्र ।
पुण्यसार के मन पर लेकिन, खिचा प्रतिज्ञा का दृढ़ चित्र ।।

कहीं समर्थन नहीं

घर आकर घरवाली से भी, जिक्र किया अपने प्रण का ।
पीब बहा करती तेजी से, मुख खुल खाने पर व्रण का ।।
नाना नानी मामा मामी, घरवाली समभाती है ।
बात तुम्हारी सुनकर हमको, हँसी हँसी ही आती है ।।
करो काम तो काम बहुत है, काम नही यह होने का ।
करे समर्थन कैसे हम सब, समय निरर्थक खोने का ।।

अपना काम शुरू

हठधारी लठधारी उठकर, चल आया सागर तट पर ।
उलीचने की इच्छा जागी, पुण्यसार के घट-पट पर ॥

दृढ़ता के साथ

खाना पीना सोना भूला, भूला है नहाना धोना ।
उलीचने से सागर खाली, आज नही तो कल होना ॥
जो भी इसे देखता हँसता, समझाता कोई आकर ।
कभी उलीचा गया बता दे, किसी व्यक्ति से रत्नाकर ॥
सुनता नही किसी की वानी, केवल फैंक रहा पानी ।
पानी बह आता पानी में, समझ न पाता अज्ञानी ॥
एक नही छह मास हो गये, थका नहीं करता यह काम ।
सुस्थित देव उपस्थित होकर, कहता करो जरा विश्राम ॥
भले सूख जाऊँगा मै पर, उदधि सुखाकर छोड़ूँगा ।
जो रोकेगा मुझे उसी का, सिर लठिया से फोड़ूँगा ॥
'कर्त्तव्य वा मर्त्तव्यं वा', मत्र लिया है मैंने सीख ।
जाओ आप आपका घर ही, होगा यहाँ बहुत नजदीक ॥
किया किसी ने जो न आज तक, जो न हुआ, होगा न कभी ।
वही कार्य कर दिखलाऊँगा, रहो देखते आप अभी ॥

चिन्तामणि लो

मन की दृढता देख अमर-मन, पिघल गया नवनीत-समान ।
चिन्तामणि ला दिया इसे फिर, समझाया गुण तथा विधान ॥
जो चाहेगा वह पायेगा, रखना पूर्णतया सम्भाल ।
हो जायेगा एक पलक में, सात पीढियों तक खुशहाल ॥
नमस्कार कर चिन्तामणि ले, पुण्यसार गिनता उपकार ।
किसी तरह भी हुआ नही क्यों हो ही गया दरिद्रोद्धार ॥

बैठ किसी तरु की छाया में, लेता प्रथम परीक्षण यो ।
हलवा और साथ पय मांगा, हाजिर हुआ उसी क्षण यो ।।
पाई तृप्ति अचंभा पाया, रैन वसेरे में सोया ।
कहो धर्मशालाओं में भी, क्या न किसी ने कुछ खोया ।।
सोया गहरी नींद आ गई, गठरी गई किनारे पड ।
चलते हुए मुसाफिर के वह, जाती है पैरो में गड़ ।।
उसने खोली गठरी उसमें, चिन्तामणि को पाया है ।
सोया पाया जब मालिक को, रत्न अमूल्य छुपाया है ।।
रत्न स्थान पर कंकर रखकर, गया मुसाफिर अपने घर ।
बहुत तरह के इस धरती पर, रहते है ठग या तस्कर ।।

वही रोना है

पुण्यसार उठ घर पर आया, सब बोले क्या लाये हो ।
लेने गये रत्न वह बोलो, साथ उसे ले आये हो ।।
हां हां चिन्तामणि लाया हूँ, गठरी खोल दिखाता है ।
मणि गुम हो गई कहीं पर, कंकर कर में आता है ।।
हँसे सभी घरवाले लेकिन, पुण्यसार रोया मन भर ।
रोने पर क्या रत्नप्राप्ति हो, चाहे रोए जीवन भर ।।

कथासार

जम्बू बोले सुनो पद्मश्री, जो नर रहते है सोते ।
होते हाल बुरे उनके यो, रत्न अमोलक जब खोते ।।
भोग, मोह, अज्ञान, विषयरस, आलस की है नीद महान ।
जगते हुए सभी जन सोते, होता कहाँ स्वय को ध्यान ।।
लुट जाने पर रोने से कुछ, आता करता हाथ नही ।
कथासार से ली जाती क्या, सीधी-सादी बात नही ।।
करो भोग का त्याग साथ में, जो रखती हो सच्चा राग ।
बिना त्याग के जला डालती, विषय-भोग-तृष्णा की आग ।।

हमें आपसे और स्वयं से प्रिय है संयम अपनाना ।
प्रभव सरीखे चोरों ने भी, मेरा कहना सच माना ।।
जगी पद्मश्री झुकी पद्मश्री, रुकी पद्मश्री चर्चण से ।
उठी पद्मसेना वर्षा ज्यो, डरी नही अति वर्षण से ।।

पद्मसेना का प्रबोध

भोग भोगने के लिए, आप नही असमर्थ ।
संयम लेने का कहो, फिर क्या होता अर्थ ।।
स्त्रियाँ ज्ञान दे पुरुष को, रीति बडी विपरीत ।
गायेगा इतिहास क्या, नारी-युग के गीत ।।
प्राप्त न हो जिसको यहाँ, वह न भोगता भोग ।
प्राप्त, नही वह भोगता, जिसके तन में रोग ।।
समय न हो, वय हो नही, भोग न उसके योग्य ।
प्राप्त सभी है आपको, साधन धन आरोग्य ।।
अप्रत्यक्ष सुख आत्म का, भौतिक सुख प्रत्यक्ष ।
लेना होता उचित क्या, अप्रत्यक्ष का पक्ष ।।
छोड हस्तगत दौडता, लेने को अप्राप्त ।
लोभी जम्बुक के यथा, दोनो हुए समाप्त ।।
सुनो कहानी आप भी, पावोगे कुछ ज्ञान ।
आत्मा पर छाया हुआ, छूटेगा अभिमान ।।

सियाल की कथा

मुख में पकड मास का टुकडा, घूम रहा था गीदड़ एक ।
नदी किनारे आया पाया, लोभ वहाँ मछली को देख ।।
मछली जल से बाहर आकर, करती थी आतप-सेवन ।
उछल-कूद कर इधर-उधर वह, बहलाती थी अपना मन ।।
गीदड़ छोड़ मांस का टुकड़ा, उसे पकड़ने को भागा ।
सोचा है बलवान बहुत ही, मेरी किस्मत का धागा ।।

गीदड के पैरों की आहट, पाकर मछली भागी डर ।
उडे पानी में जा बैठी, पानी उसका रक्षक-नर ।।
खडा प्रतीक्षा करता गीदड, जो यह बाहर आ जाये ।
मधुर मांस के आस्वादन से, मन में खुशियाँ छा जाये ।।

सियाल और श्रमण

आया जहां मांस छोड़ा था, उसे चील ले उडी गगन ।
भूखा मरता बैठा जम्बुक, करता है अब अश्रु-पतन ।।
आये श्रमण उधर से कोई, बोले वे अवसर पहचान ।
ओ गोमायु ! रुदन कर अब, क्यों दिखलाता अपना अज्ञान ।।
खाद्य हस्तगत त्याग, सलिलगत पाने को ललचाया क्यो ।
अधिक प्राप्ति की इच्छा में, जो पाया वह ठुकराया क्यो ।।
मुनिवर गये गया जंबुक भी, जीवित यही कथा सारी ।
प्राप्त भोग ठुकराकर करते, क्यो संयम की तैयारी ।।

शांति नहीं मिलेगी

गिरते हुए हमारे आँसू, बनकर आग जलायेगे ।
हानि लाभ आयेगा सम्मुख, जब कुल गुणन फलायेगे ।।
शान्ति नहीं पावोगे हमको, अगर न दोगे शांति यहाँ ।
जिसे यहाँ पर शांति नही है, उसे वहाँ पर शांति कहाँ ।।

जम्बू का जवाब

जम्बू बोले भोगों से क्या, शांति किसी ने पाई है ।
शांति शांति कहने वालों ने, भ्रांति बड़ी फैलाई है ।।
मैं क्या शांति दिला सकता हूँ, जब मैं भी हूँ शांत नही ।
मार्ग वही दिखला सकता, जो होता नर दिग्भ्रान्त नही ।।
विषय बढ़ानेवाली नारी, मकड़ीवाला जाला है ।
होश भुलानेवाली प्याली, जिसमे डाली हाला है ।।

फँस सकता है वह नर जिसमें, खुद की होती अकल नही ।
अच्छे छात्र उतारा करते, कभी किसी की नकल नहीं ।।
भोगी रोगी क्या अपने को, सकते है संभाल कभी ।
जलदर्शन क्या करने देती, रंगोनी शेवाल कभी ।।
विद्युन्माली मातंगी का, क्या कर पाया था साधन ।
मन का वहुत बड़ा है बन्धन, इसीलिए भोगाराधन ।।

विद्युन्माली की कथा

कोष्टकग्राम निवासी विद्युन्माली और मेघरथ दो ।
बडा भाग्यशाली नर होता जिसका कोई भाई हो ।।
मातंगी विद्या का साधन, करने की इच्छा जागी ।
उसे वही मिल जाता जिसका, जो होता है अनुरागी ।।

साधन विधि

पाणिग्रहण चांडाल सुता से, करे वर्षभर रहे वही ।
मंत्र जाप विधि गोपनीय सब, अन्य किसी से कहे नही ।।
स्त्री को सम्मुख बिठला करके, जाप करे स्थिर मन आसन ।
ब्रह्मचर्य के प्रतिपालन से, रखे स्वयं को अति पावन ।।
पुर वसंत प्रेम से पहुँचे, जहाँ बड़ा चांडाल मिला ।
प्रथम मिलन मे हो जाती है, प्रगट स्वयं की सकल कला ।।
पूछा उसने आओ युवको ! दिखते हो भोले-भाले ।
सौम्य भद्र दर्शन से लगते, कुलाचार के उजियाले ।।
हम दोनो चाडाल-पुत्र है, अपमानित घरवालो से ।
शरण चाहते सभी तरह से, तुम जैसे जरवालो से ।।

दोनों का विवाह

मिला स्थान सम्मान सहित, अव दोनो सुख से रहते है ।
जिसके लिए यहाँ आए वह, वात नही वे कहते है ।।

कन्याएँ दो थी अन्त्यज के, विदुषी और सयानी भी ।
पाणिग्रहण के लिए निवेदन, करती सदा जवानी भी ॥
इन दोनों पर ध्यान गया है, परिचित और सुयोग्य भले ।
कन्याएँ दे दी जाएँ बस, चिन्ता अपने आप टले ॥
इनका हुआ विवाह चाह, निज मन की पूरी होने को ।
ध्यान किसान स्वयं देता है, बीज समय पर बोने को ॥

मेघरथ की साधना

लगा मेघरथ ब्रह्मचर्यव्रत, लेकर जपने जाप भला ।
बिना स्थैर्य के बिना शील के, नही किसी का जाप फला ॥
पत्नी को सम्मुख बिठलाता, पहनाकर सोलह शृंगार ।
नही पिघलने देता घृत को, जलते निकट विकट अंगार ॥
एक वर्ष तक आराधन से, सिद्ध हो गई मातंगी ।
मातंगी विद्यावाले ने, नही कभी देखी तंगी ॥

विद्युन्माली का मोह

विद्युन्माली भूल गया है, विद्याराधन करना भी ।
भूल गया महलो में चढ़कर, नीचे कभी उतरना भी ॥
हुई सगर्भा पत्नी उसकी, ब्रह्मचर्य का नाम नहीं ।
मंत्र साधना शुद्धि बुद्धि का, रहा वहां पर काम नहीं ॥
विद्युन्माली से मिलने को, स्वयं मेघरथ उठ आया ।
अपने भाई का घर देखा, काम सभी उलटा पाया ॥
बोला, आया इसीलिए क्या, विद्याराधन किया नही ।
मंत्र जाप का ब्रह्मचर्य का, सत्य सहारा लिया नही ॥
लज्जा से झुक गया शीश वह, क्षमा माँगने लगा तुरंत ।
एक वर्ष तक यही रहूँगा, लूगा अब संयम का पंथ ॥
वर्ष बाद फिर खोज खबर तुम, लेने को आ जाना जी ।
सुनकर भाई घर पर आया, करके काम सयाना जी ॥

गया वर्ष के बाद गोद मे, शिशु को लिए खड़ा भाई ।
पड़ा मोह ये देख सोचता, मन मे खड़ा बड़ा भाई ॥

गर्भवती हो गई पुनः वह, विद्युन्माली की नारी ।
भाई जी इस बार भूल भी, मेरी हुई सुनो भारी ॥
एक वर्ष फिर रहकर देखो, किस्मत को अजमाऊँगा ।
मातगो का साधन करके, साथ तुम्हारे आऊँगा ॥

फिर भी वही दशा

उठा मेघरथ आया घर पर, देख भयकर मोहदशा ।
विद्या क्या साधेगा भाई, विषय पाश में फँसा धँसा ॥
फिर आ देखा दो पुत्रों को, खिला रहा विद्युन्माली ।
पुत्र तीसरा लिए उदर मे, घूम रही है घरवाली ॥
भाई लेने गया नही फिर, सार न समझा कहने का ।
बार-बार कहने से रास्ता, अच्छा है चुप रहने का ॥

कथासार

विद्युन्माली फँसा जाल मे, कर पाया क्या विद्या सिद्ध ।
जम्बू बोले समझ लीजिए, कथासार है बहुत प्रसिद्ध ॥
फँसता नही उसे भी नारी, फँसा डालती भोगों में ।
विषय वासना काम-मोह की, आग लगाती लोगों में ॥
मुक्ति साधना करने वाला, मै क्यो विचलित होऊँगा ।
विषय जाल में फँसकर सयम-व्रत धन कभी न खोऊँगा ॥
नही पद्मसेना अब बोली, समझ गई है मन ही मन ।
फणधर फण न मारता फिर से, पढ़ देने पर नागदमन ॥

कंचनसेना की कला

कंचनसेना आई उठकर, अपनी बात मनाने को ।
मध्य मार्ग अपनाये समझा, जाए नाथ जमाने को ॥

अतिवर्षा अतिधूप शीतअति, अतिरति विरति न अति उत्तम ।
रोग भोग अति योग नही शुभ, शुभ है मार्ग सदा मध्यम ॥
अतिभोजन अतिपान शयन अति, मौन कथन अति कब अच्छे ।
अति अत्यंत बुरी होती है, मध्यममार्गी स्वर सच्चे ॥
मर्यादा में रह करके ही, सयम भाव करो स्वीकार ।
अच्छा कैसे हो सकता है, भोगो का जड़ से परिहार ॥
वह्नि नृपति वनिता का सेवन, मध्य भाव से करने का ।
नातिनिकट अति दूर न रहना, सुख के साथ विचरने का ॥
उत्तम भोग त्याग भी उत्तम, बुरा नही कोई भी एक ।
भोग त्याग के संसेवन में, हमें चाहिए पूर्ण विवेक ॥
भोग त्याग से त्याग भोग से, जुड़े हुए ही प्यारे है ।
भारतीय संस्कृति सरिता के, दोनो सबल किनारे है ॥
केवल शब्द अर्थ हो केवल, दोनो का कुछ रहा न अर्थ ।
केवल त्याग भोग हो केवल, तो होगा जीवन भी व्यर्थ ॥
शंखधमक ने अति करके ही, चोरो द्वारा खाई मार ।
बहुत विज्ञ हो बहुत सयाने, क्यों बैठे इतना हठ धार ॥
कचनसेना लगी सुनाने, शखधमक की सरस कथा ।
अति करनेवाले की होती, दशा बुरी से बुरी यथा ॥

शंखधमक की कथा

गांव सुरपुर में रहता था, शंखधमक जड़बुद्धि किसान ।
व्यवहारिकता नीति रीति का, जिसे नही था ऊँचा ज्ञान ॥
जीवन-यापन करने का था, साधन शुभ खेती-बाडी ।
किसी तरह से खीच रहा था, दो पहियेवाली गाड़ी ॥
भरा धान से खेत देखकर, हर्ष मनाता मन ही मन ।
शंख बजाकर कर लेता था, पके खेत का सरक्षण ॥

शंख बजाने से ही उसका, नाम पड़ा था शखधमक ।
शंखधमक के जीवन में थी, शांति प्रेम की शुद्ध दमक ।।

धन लाभ

एक रात की बात खेत के, पास बाँटते थे धन चोर ।
कोई नही देखता, पहले, देख लिया था चारो ओर ।।
आहट पाकर शंखधमक ने, शख बजाया जोरो से ।
सहन नही हो पाया था वह, शख शब्द उन चोरो से ।।
माल पडा रह गया वही पर, शखधमक के हाथ लगा ।
सोचा सोया भाग्य अचानक, शख शब्द के साथ जगा ।।
माल उठाकर घर पर आकर, स्त्री को लगा बताने धन ।
धन पा करके खुश होता है, लोभी नर-नारी का मन ।।

स्त्री की इच्छा

आवश्यकता हमे नही अब, खेती करने जाने की ।
रात जगाने विहग उडाने, मुख से शंख बजाने की ।।
शंखधमक ने सोचा स्त्री का, कहना उचित नही बिलकुल ।
शख बजाते रहने से ही, भाग्य दुबारा सकता खुल ।।
जैसे धन पाया था वैसे, अधिक अर्थ फिर पाऊँगा ।
छत पर चढ़कर निशिभर बैठा, बैठा शंख बजाऊँगा ।।
पत्नी बोली अति वर्जित है, खा बैठोगे मार कभी ।
धन पाने का नशा नही, क्या देगे चोर उतार कभी ।।
शंखधमक हठधारी नर ने, माना स्त्री का वचन नही ।
रोग अजीर्ण सताने लगता, जब हो खाना पचन नही ।।
रह रहकर अंधेरे मे वह, शख बजाता चढ़ छत पर ।
चोरो का दल वही आज फिर, निकला चोरी हेतु इधर ।।
शख शब्द सुन लगा सोचने, वही शंखवाला नर है ।
और अभी भी शख बजाता, बैठा घर की छत पर है ।।

छीना शंख हाथ से इसको, पीटा है अति जोरो से ।
नही सामना भी कर पाया, आप अकेला चोरों से ।।
चोर गये बदला ले करके, शखधमक ने खाई मार ।
अति करने का जो फल होता, वही कथा का निकला सार ।।

सार से सार

प्रियवर ! सयममार्ग कठिन है, भोगमार्ग है कठिन महान ।
मध्यममार्गी बनने का ही, आप बना लो अपना ध्यान ।।
दूर हमारे से रहने से, अत्युत्सुकता जागेगी ।
पास अधिकतम रहने को फिर, प्रेम भावना भागेगी ।।
आवश्यकताएँ जो तन की, अलग न उनसे भोग कही ।
भोग त्यागने का भी बोलो, एक नया क्या रोग नही ।।

जम्बू का जवाब

मध्यममार्गी वह बनता है, जिसकी शक्ति न विकसित हो ।
त्यागी पूर्ण वही बन पाता, जिसके सम्मुख निज हित हो ।।
त्याग भावना से ही होता, भारतीय संस्कृति का ज्ञान ।
त्याग भावना से ही होता, मानवता का हित सम्मान ।।
त्याग भावना से ही होता, साम्यभाव का सही विकास ।
त्याग भावना से ही होता, धर्म मार्ग पर स्थिर विश्वास ।।
त्याग भावना से ही मिलता, आत्मभाव का सहजानन्द ।
त्याग भावना से ही होता, विषय-वासना का मुख बन्द ।।
प्यासे बन्दर की कीचड़ से, बुझने पाई प्यास नहीं ।
भोगों से मन शांत बनेगा, क्या यह मिथ्याभास नही ।।
कंचनसेना बोली प्रियवर, कहो कहानी बन्दर की ।
ऊपर से हम कुछ भी बोलें, भोली-भाली अन्दर की ।।

बन्दर की कथा

जम्बू बोले विन्ध्य शैल पर, कपियो का था यूथ बड़ा ।
यूथाधिपति एक बल शासन, देखा जाता बड़ा कड़ा ॥
वन में कमी न फल फूलो की, कमी नही थी यौवन की ।
खुशियाँ माप न सकता कोई यूथेश्वर कपि के मन की ॥
नही दूसरा वानर कोई, आ सकता था उस वन में ।
कौन रोकता इसे वहाँ पर, स्वेच्छापूर्वक विहरन में ॥
सीमा स्त्रियाँ अर्थ तीनों ही, रण के कारण होते है ।
पशु हो नर हो निर्जर हो, सब बीज कलह के बोते है ॥
वृद्ध हो गया यूथेश्वर कपि, गया कही जल पीने को ।
एक युवा कपि खड़ा हुआ आ, तान स्वयं के सीने को ॥
आया वानर वृद्ध परस्पर, हुई लड़ाई अति भारी ।
किसी क्षेत्र में किसी समय मे, जोर जवानी क्या हारा ॥

यूथेश्वर की हार

हार गया वह बूढ़ा वानर, वन से उसे निकाला है ।
युवा कपीश्वर ने इस वन का, अब नेतृत्व सभाला है ॥
बूढ़ा वानर भागा निकला, डरकर प्राण बचाने को ।
कौन इसे आमंत्रित करता, नव सगठन बनाने को ॥

अति भगने से खा न सका फल, पी न सका वह पानी भी ।
प्यासे से न सुनाई जाती, अपनी दर्द कहानी भी ॥
कही पहाडो के गड्ढे में, कीचड़ ही कीचड पाया ।
लेटा उस कीचड मे लथ-पथ, करली है अपनी काया ॥
कीचड ने कब प्यास बुझाई, वही दे दिए अपने प्राण ।
प्यास बुझाने की अभिलाषा, कर न सकी कपि का परित्राण ॥

जम्बू का संकेत

कीचड़ तुल्य विषय भोगों से, शांति बाहरी मिल पाती ।
आत्म-शांति की जड़े मूल से, भोगों द्वारा हिल जाती ॥
भोग रोग से पीड़ित भोगी, रोगी दुःख उठाते है ।
समझाकर इनके तन मन, को कोई स्वस्थ बनाते है ॥
विषयमुक्ति ही मुक्ति परम है, भोगवासना बन्धन है ।
भोग राग ही नरक, त्याग का, अपनाना वन नन्दन है ॥
कचनसेना बोल न पाई, युक्ति युक्ति से कटने पर ।
वजन उठा पाता क्या कोई, वजन स्वग्र का घटने पर ॥
चार हुई तैयार साथ में, अपनाने को संयम सार ।
चार किनारे बैठी बैठी, करती तर्क नये तैयार ॥

नभसेना का नवोत्साह

नभसेना उठ आई सम्मुख, प्रियचरणों में किया नमन ।
नई युक्तियों से करने को, प्रियशका का शमन दमन ॥
मुनि बनने से मुक्ति सुखो का, खुल जाता है द्वार कही ।
फैली हुई मान्यता ऐसी, इसका पुष्टाधार नही ॥
किसी व्यक्ति के कर लेने पर, वैसा करना जडता है ।
देखा-देखी करता उसको, पछताना ही पडता है ॥
सिद्धि बुद्धि की कथा नहीं क्या, सुनी आपने अब तक नाथ ।
देखा-देखी करने से क्या, कभी शांति सुख आते हाथ ॥
उदाहरण से अपना आशय, अधिक स्पष्ट हो जाता है ।
विज्ञ विज्ञ के वचनो पर ही, तर्क वितर्क उठाता हैं ॥

प्रेरक वचन

जम्बू बोले बड़े प्रेम से, सिद्धि बुद्धि की कथा कहो ।
जो कहना है कहो किसी से, पीछे नभसेना न रहो ॥

सुनना हमें शांति से सबको, कहना जो भी शाश्वत सत्य ।
रोगी का हित देखा जाता, वैद्य बताता पथ्य अपथ्य ।।

सिद्धि बुद्धि की कथा

नन्दी नाम गांव था सुन्दर, सभी तरह से सुखकारी ।
सहिष्णुता सुख प्रेम शांति से, रहते थे सब नर-नारी ।।
छोटे छोटे स्वच्छ घरों में, सादाई ने पाया स्थान ।
खान-पान-परिधान ज्ञान से, संस्कृति का होता अनुमान ।।
बुरे व्यसन मन, बुरे वसन तन, रहने देते नहीं पवित्र ।
पवित्रता से संवंधित नित, रहते दर्शन ज्ञान चरित्र ।।
चोरी झूठ कपट छल निन्दा, ईर्ष्या आवे पास नहीं ।
हुआ वहां पर ऐसा उस पर, जन मन का विश्वास नहीं ।।
रहती दो वृद्धाएँ जिनका, सिद्धि-बुद्धि था नाम भला ।
जीवन यापन की न याद थी, इन्हें एक भी श्रेष्ठ कला ।।
कहते है सुख किसे अभी तक, सुख का मुख न निहारा था ।
दरिद्रता के द्वारा अपना, वीता समय गुजारा था ।।

सिद्धि की साधना

धन के बिना किसी को भी सुख, मिला नहीं मिलनेवाला ।
सूई धागे से न मिले तो क्या, सीए सिलनेवाला ।।
किसी यक्ष के आराधन का, किया सिद्धि ने दृढ निश्चय ।
कार्य सिद्ध हो जाता सत्वर, देता है जब साथ समय ।।
यक्ष प्रगट हो बोला—बोलो, कैसे मुझे बुलाया है ।
कहा सिद्धि ने धनाभाव ने, बारम्बार रुलाया है ।।
करो कृपालु ! आप कुछ करुणा, दुख के ये दिन कट जाये ।
कहां भिखारी जाये बोलो, सभी व्यक्ति जो नट जायें ।।
सुना यक्ष ने कष्ट सिद्धि का, दिल में करुणा उमड़ पड़ी ।
उमड़-घुमड कर घटा चढ़ो हो, लगती देखो तभी झड़ी ।।

प्रतिदिन ले जाना

लो, दो सोनैये ले जाओ, सुख से खाओ पीओ जी ।
प्रतिदिन आना ले जाना फिर, शांति प्रेम से जीओ जी ॥
सिद्धि सिद्धि को मिली यक्ष से, अब कोई भी कष्ट नही ।
चिन्ह शांति के और भ्रान्ति के, रह सकते अस्पष्ट नही ॥
देख सिद्धि को सुखी सोचने लगी बुद्धि यों मन ही मन ।
आया कैसे और कहाँ से, पास सिद्धि के धन ही धन ॥
नही आज तक इसने कोई, बात छिपाई मेरे से ।
जाऊँ, पूछूँ, कैसे निकली, दरिद्रता के घेरे से ॥
मैं तो दुखी दुखी हूँ अब तक, हुई दुखी से सुखी सखी ।
सुखी शीघ्र बन जाने की विधि, छुपा छुपाकर कहाँ रखी ॥
सहा नही जाये यह वैभव, रहा नहीं जाये पीछे ।
यह इतनी ऊँची बन जाए, क्यो मैं रह जाऊँ नीचे ॥

रास्ता मिल गया

आई पास सिद्धि के बोली, बुद्धि बडी चतुराई से ।
धन का मेरु बनी तू कैसे, बता सहेली राई से ॥
सुधरी देह गेह भी सुधरा, सुधर गया है स्नेह स्वभाव ।
पाये धन का छिपा न रहता, पड जाता है प्रगट प्रभाव ॥
बता दिया है सरल सिद्धि ने, मिला यक्ष से जो वरदान ;
जुटा लिया है तुरत बुद्धि ने, यक्षाराधन का सामान ॥

वरदान मिला

प्रगट हो गया तुष्ट यक्ष ने, दिया बुद्धि को वचन विशेष ।
चार मोहरे प्रतिदिन पाऊँ, चाहूँ ऐसा शुभ आदेश ॥
बुद्धि सिद्धि से बढकर अब तो, शांति प्रेम सुख पाती है ।
सिद्धि बुद्धि की ऋद्धि देखकर, मन ही मन जल जाती है ॥

कहा सिद्धि ने मुझे बुद्धि से, दूने धन का दो वरदान ।
यक्ष तमाशा लगा देखने, देख लोभ ईर्ष्या अज्ञान ॥
फिर दुगना मांगा मति ने धन, देख सिद्धि मन जली भुनी ।
मेरी सखी वुद्धि नित माया, मांग रही दुगुनी दुगुनी ॥
दुगुनी का फल इसे चखाऊँ, लगी सोचने सिद्धि उपाय ।
किसी दूसरे को दुख देना, क्या न स्वयं के प्रति अन्याय ॥
ध्यान लगाया यक्ष देव का, कहा सिद्धि ने सुनलो यक्ष ।
मेरी बांयी आंख फोड़ दो, अगर आपका फल प्रत्यक्ष ॥
कहा बुद्धि ने बिना विचारे, मुझे सिद्धि से दो दुगुना ।
सखी सिद्धि ने क्या मांगा वह, पूछा नहीं न सुना न गुना ॥
गई वुद्धि की दोनों आंखें, दुगुना जब मांगा वरदान ।
अव पछताने से क्या होता, ईर्ष्या लोभ दुःख के स्थान ॥
कहा यक्ष ने मेरे से अब, पाओगो वरदान नहीं ।
किसी दूसरे के सुख का तुम, कर पातो सम्मान नहीं ॥

कथासार

नभसेना ने कहा नाथ अब, कथासार लो स्वयं उतार ।
दुगुना सुख पाने की इच्छा, अच्छी है क्या करो विचार ॥
मैं भी मुक्ति आत्मसुख पाऊँ, जैसा उस नर ने पाया ।
ऐसी इच्छा रखना ही है, ईर्ष्या लोभ महामाया ॥
जो, जितना सप्राप्त उसी का, भोग करो उपभोग करो ।
देख दूसरे के सुख धन को, लालच का न प्रयोग करो ॥
नही सुखी की ओर देखिये, देखो किसी दुखी की ओर ।
छोड अतीत भविष्य सुज्ञजन, वर्तमान पर देते जोर ॥

जम्बू का जवाब

संयम लेने वाले नर में, ईर्ष्या वाली आग नही ।
ईर्ष्या मोह लोभ संप्रेरित, कहला सकता त्याग नही ॥

किसी दूसरे का अनुकरण न, लोभ संवरण भोगों का ।
सहज चरण स्वीकरण करणयुत, दोष न तीनों योगों का ।।
सत्य संयमाराधन से ही, सकल सिद्धियाँ आती पास ।
कर्म विनाश पूर्ण होते ही, मिल जाता है मुक्ति प्रकाश ।।
जिसने शिक्षा ली संयम की, उसे असंयम का क्या डर ।
घोड़ा ज्यो जिनदास सेठ का, चुरा नहीं पाया तस्कर ।।
कथा सुनो नभसेना जिससे, संयम मार्ग बने संपुष्ट ।
संयम जब तक नही रुचेगा, तब तक आप रहोगी रुष्ट ।।
रोगी रुष्ट वैद्य से रहता, जब तक मिटता रोग नही ।
भोग रुष्ट संत से रहता, जब तक छुटते भोग नही ।।

घोड़े की कथा

पुर साकेत स्वच्छ अति सुन्दर, रहता श्रावक श्री जिनदास ।
वसुधाधिपति जितारि धर्म का, करता अधिक-अधिक अभ्यास ।।
व्यसनी नर को और व्यसन को, रहने देता पास नही ।
दुर्जन जन के संग रग से, क्या हो जाता नाश नही ।।
अश्वपरीक्षक शिक्षक ऊँचे, माने जाते श्री जिनदास ।
कद्र कला की होने से ही, पाया करती कला विकास ।।
नृप के पास एक था घोडा, भाग्यवान गुणवान विशेष ।
इसको शिक्षित कर देने का, श्रावक ने पाया आदेश ।।
शिक्षा पाये बिना जानवर, कहलाया करता है नर ।
शिक्षा से ही पशु अथवा नर, जाया करते क्या न सुधर ।।
चाबुक खाया नही कभी, नहीं सेठ ने मारा भी ।
जातिवान के लिए बहुत ही, माना गया इशारा भी ।।
परम विनीत अश्व पर चढ़कर, उसे पिला लाते पानी ।
आते समय जैन स्थानक मे, रुकते जहाँ श्रमण-ज्ञानी ।।

स्थानक से घर पर आ जाता, प्रतिदिन का क्रम बना यही ।
अन्य कही जाने की अनुमति, श्रावक जी की नही रही ॥
उसके उत्तम गुण की गणना, करना माना कठिन महान ।
अश्वोन्नति से राज्योन्नति का, था सम्बन्ध तथा विज्ञान ॥

पडौसी राज्य में

किसी पडौसी नृप ने देखा, कैसे इनका राज्य सुखी ।
सुखी दूसरा होने से ही, शत्रु नृपति मन दुखी-दुखी ॥
कारण क्या है इसका इसकी, हमे मिले कैसे पहचान ।
सभा बुलाई किए गए थे, जिसमे आमत्रित विद्वान ॥
उन्नति करता राज्य शत्रु का, इसका क्या है गुप्त रहस्य ।
साधन एक सदृश होने पर, क्यो न खेत सम देता शस्य ॥
एक गुप्तचर बोला इसका, कारण एक वही घोड़ा ।
जिसको नृप ने पास सेठ के, बहुत दिनो से है छोडा ॥
अश्व जाति की उत्तमता से, उन्नत होता नृप शासन ।
उत्तम शब्दावलि से उत्तम होता वक्ता का भाषन ॥
वसन बिछाकर उसे नचाए, सलवट पाता वसन नहीं ।
दुबला पतला इतना मानो, खाता हो कुछ अशन नही ॥
अगले पाव मिलाता है वह, पिछले पांवो पर रख भार ।
मानो ढोलक कही बजाता, कहता है ऐसा संसार ॥
स्वर्ण रंग से अग सजा है, केवल नथुने हरे हरे ।
बालो का सर मुकुट मनोहर, गति में अजब गजब नखरे ॥
खड़ी कनौती देती इसकी, उत्तमता का पुष्ट प्रमाण ।
इसे नचाने वाला इस पर, लुटा दिया करता निज प्राण ॥

मंत्री की सलाह

घोड़ा अगर यहाँ आ जाये, राज्य हमारा बढ जाये ।
धूप क्या न चढ़ जाती बोलो, स्वयं सूर्य जब चढ़ जाये ॥

शत्रु राज्य की उन्नति से नित, हमें बना रहता है भय ।
कभी आक्रमण कर सकता है, पाने से कुछ भेद समय ॥
आज्ञा दो तो उस घोड़े को, कर अपहरण यहाँ लाऊँ ।
राज्य बढ़ाऊँ शोभा पाऊँ, इसके लिए स्वयं जाऊँ ॥
राजा बोला करो काम यह, करना जो लगता आसान ।
संभव सभी उपाय कीजिए, देख लीजिए शकुन विधान ॥

मंत्री का कपट

मत्री गया जैन स्थानक में, श्रावक बना पुराना है ।
दर्शन किए साधुओं के फिर, सामायिक व्रत ठाना है ॥
जिनस्तुति गुरुस्तुति गाता, केवल दिन में पीता खाता है ।
तिथियों के उपवास सपौषध, सह जागरण निभाता है ॥
जयजिनेन्द्रदेव कर सबसे, विनयभाव दरसाता है ।
जो भी मिलने आता उसको, धर्मध्यान सिखलाता है ॥
लेता है मिच्छामि दुक्कडं, व्रत में लग जाने पर दोष ।
चितारता है बड़े थोकड़े, उपजाता मन को सतोष ॥
श्रावक श्री जिनदास सेठ ने, देखा धर्मक्रिया करते ।
साधर्मिक वात्सल्य हृदय से, आँखो से झर-झर झरते ॥
बोले—श्रावक जी ! मेरे घर, चलो आप खाना खाने ।
साधर्मिक सम्बन्ध हमारा, हमें आप भाई माने ॥
मेरे घर पर आप सोइए, हो जायेगा सभी प्रबन्ध ।
आई नही कही श्रावक को, कपट क्रिया की कोई गध ॥

श्रावक का विश्वास

पत्र मित्र का मिला उसी दिन, श्रेष्ठी को आ जाने का ।
घोड़ा किसको सौपा जाये, कब विश्वास जमाने का ॥
लड़के कुछ अविनीत अधिक थे, कुछ लड़के थे अति छोटें ।
समझदार नर के पल्ले भी, पड जाते सिक्के खोटें ॥

ध्यान गया कपटी श्रावक पर, बोला मेरा काम करो ।
मुझे जरूरी जाना बाहर, आप यहीं पर ही ठहरो ॥
घोड़े की जो जिम्मेवारी, उसे निभा सकते है आप ।
बिना भरोसे जी न मानता, चाहे सुत हो चाहे बाप ॥
मंत्री बोला—जल्दी आना, काम आपका कर दूंगा ।
मिला आपसे प्रेम प्रेम पर, शीश काटकर धर दूंगा ॥
सेठ गया स्नेही के घर पर, कपटी श्रावक पाया हर्ष ।
कपटक्रिया का कही अन्त में, क्या अच्छा निकला निष्कर्ष ॥

अपहरण की असफलता

सोया जब परिवार शहर सब, मत्री ने घोडा खोला ।
चलो हमारे घर पर प्यारे, बड़े प्रेम से यू बोला ॥
मंत्री हुआ सवार न घोडा, अपना पॉव उठाता है ।
दयाहीन दिल कसकर, उस पर चावुक जोर जमाता है ॥
दौड़ा घोड़ा घर से सर तक, सर से स्थानक आया है ।
स्थानक से घर पर आकर, फिर पांव न एक उठाया है ॥
मत्री ने सोचा अडियल की, अडी मिटाऊँगा सारी ।
ऐसे जातिवान अश्वो की, मिटा चुका मै बीमारी ॥
फिर मारा बेचारा दौड़ा घर से सर, स्थानक, घर पर ।
तीन स्थान पर ही जाने का, था इसको अभ्यास प्रवर ॥
कपटी श्रावक उलझ गया है, पूर्व दिशा में लाली देख ।
अब न यहाँ पर रुकना अच्छा, खुल जायेगा कपट-विवेक ॥
छोड अश्व को भागा आया, हाल सुनाया नरवर से ।
सफल हुआ या असफल यह तो जाहिर हो जाता स्वर से ॥

सेठ का दुःख

पशु होने पर भी वह घोडा, थका हुआ घर पर आया ।
उसके दुःख का अन्त न जिसने, कभी नही चावुक खाया ॥

किसे सौंपकर मालिक मेरा, चला गया है आज कहाँ ।
जहाँ मूलधन डूबा जाता, डूबेगा भी ब्याज वहां ।।
प्रातः होने पर घर आकर, श्रेष्ठी ने देखा घोड़ा ।
हाय हाय मेरे घोड़े को, किसने यह मारा कोडा ।।
कपटी श्रावक का न पता अब, पता लगा सब बातो का ।
अश्व चुराने को आया, फल दिखा न पाया हाथो का ।।

कथासार

दर्शन ज्ञान चरित्र तीन ये, स्थान बहुत सुन्दर प्यारे ।
मन घोडा है और चोर है, काम क्रोध मद मतवारे ।।
सेठ समान सुगुरु सुखदाई, है शिक्षित करनेवाले ।
उस आत्मा की उन्नति होती, जो इस मन को संभाले ।।
मुझे मिले है सद्गुरु सच्चे, मैं त्यागूँगा भोगों को ।
भोग त्याग की महानता भी, समझाऊंगा लोगो को ।।
क्षुधा-पिपासा मिट पाती, कब खाते-पीते रहने से ।
अंत पथ का कब आता है अविश्रांत गति बहने से ।।
वन्हि शांत क्या हो जाती है, पाकर इन्धन की मात्रा ।
होती क्या उत्तीर्ण कभी वह, अप्रविष्ट जो है छात्रा ।।
जम्बू के वचनो की स्वीकृति नभसेना से प्राप्त हुई ।
जीत हार की नही घोषणा, चर्चा सकल समाप्त हुई ।।

स्वर्णश्री का संकेत

कृतनिर्णय पर दृढ श्री जम्बू, डिग जाने का नही सवाल ।
क्या न सुमेरु शिखर ने देखे, छोटे-बड़े बहुत भूचाल ।।
छठी स्वर्णश्री उठी जुटी है मनवाने को अपनी बात ।
अपनी बात छोड़ दी जाये, इतने हठी बनो मत नाथ ! ।।
पूंछ गधे की पकड रखी हो, वह नर खाता जाता लात ।
नही समझ में आये तो भी, सुज्ञ जनों को मानें वात ।।

क्या हम सारी महामूर्ख है, केवल आप एक विद्वान ।
क्यों न हमारे मन-धन-यौवन-जीवन पर देते हो ध्यान ।।
आप और हम साथ साथ में, स्वीकारेंगे संयम भार ।
सयम भार श्रेष्ठ है उससे, कौन यहाँ होता इन्कार ।।
एक बार हठ छोड़ दीजिये, मोड लीजिए अपना मन ।
इससे और सुदृढ़ ही होगा, क्या न हमारा अपनापन ।।
कथा एक जडमति लड़के की, सुनो ध्यान देकर के आप ।
अनुमोदित आचरित मार्ग से, जाने देगी नही खिलाफ ।।

दुराग्रही लड़का

सुवश गांव में रहने वाला, द्विजसुत दुराग्रही था एक ।
बिना भाग्य के बहुत दिनों तक, नही पितृसुख पाया देख ।।
केवल बूढी मां ने इसको, पाला-पोसा किया बड़ा ।
मां बोली मत खेलो कूदो, पढ़ो परिश्रम करो कड़ा ।।
मां ! मै कैसे पढ़ने जाऊँ, शिक्षक लोग मारते मार ।
मां ने कहा स्वय जा करके, कह दूगी करने को प्यार ।।
कोमल बालक का मन कोमल, तन कोमल ही होता है ।
उसको मार मारने का फल, सदा कुफल ही होता है ।।
मार-सार की कहावतों का, देखो गया जमाना बीत ।
वर्तमान क्या बुरा रहेगा, बुरा रहा हो अगर अतीत ।।
विद्याधन अर्जन करने का, बचपन ही है समय भला ।
प्रौढ़ जनों से प्यार न करती, शिक्षा-युवती-नई कला ।।
अनुशासन मे रहना सीखो, सीखो जो सिखलाये स्कूल ।
शिक्षक की क्या तेरी ही तो, होगी बेटा ! कोई भूल ।।
लगन लगाकर पढो पाठ नित, छोडो मत जो पकडो टेक ।
पकडी टेक छोड़ने वाले, खो देते है सत्य विवेक ।।

टेक पकड़ ली

मां की बाते सुनकर सुत ने, ध्यान लगाया पढ़ने में ।
आलस, विकथा, व्यसन, बुराई, बाधक होते बढ़ने में ।।
लेकर पट्टी बस्ता अपना, विद्यालय की तर्फ बढ़ा ।
कौन पूछने वाला इसको, सुना पाठ जो आज पढ़ा ।।
मिला रेंगता गर्दभ कोई, इसने पूछ पकड ली है ।
पकड़ी टेक न छोडी जाये, शिक्षा ग्रहण यही की है ।।
गदहा पीछे के पैरो से, लगा मारने मुँह पर लात ।
पूँछ छोड़ देने की इसको, कहते सारे सज्जन बात ।।
मेरी माँ ने मुझे कहा है, पकडी टेक न छोडो जी ।
शपथ प्रतिज्ञा जो ले ली हो, उसे कभी मत तोडो जी ।।
जाए चाहे प्राण, प्राण की, है परवाह नही कोई ।
आगे गर्दभ पीछे द्विजसुत, भाग रहे दो के दो ही ।।
लड़का जान गंवा बैठा है, जिद्द तान करके खोटी ।
कथा बहुत उपयोगी है यह, मोटी नही बहुत छोटी ।।

कथासार

रहा स्वर्णश्री का यह आग्रह, आप आग्रही हो पक्के ।
पक्के कहलाने वाले नर, खाया ही करते धक्के ।।
बात स्त्रियो की सभी मानते, जितने लोग सयाने है ।
लोक प्रथाओ से प्रियतम क्या, स्वयं कही अनजाने है ।।
इतनी पकड अकड यह इतनी, क्या सुख दिखला सकती है ।
समझो नही, स्वर्णश्री सब कुछ, कही नशे में बकती है ।।

जम्बू का जवाब

सुनकर कथा हास्य रस पूरित, जम्बू देते प्रत्युत्तर ।
जड़मति जिद्द त्याग दे कैसे, कथन आपका सत्य सखर ।।

सुनो स्वर्णश्री सयम लेना, नही दुराग्रह है मेरा ।
मुझे बताओ इस दुनिया में, क्या है अपना स्थिर डेरा ॥
परिजन धन यौवन पर मरते, अज्ञानी मायावी नर ।
मौत खड़ी माथे पर जिसका, उनको किंचित् वही फिकर ॥
स्वर्णिम अवसर खो देने पर, रह जाता है पश्चात्ताप ।
रोते नही साथ मे कोई, भाई-मित्र-पुत्र-मा-बाप ॥
कछुवे ने क्या पुनः पा लिए, पूर्ण चन्द्रमा के दर्शन ।
घरवालों के स्नेह-बंध का, छोड़ न पाया आकर्षन ॥

कछुवे की कथा

कादम्बिनी नाम के वन में, एक जलाशय था भारी ।
वन से सर सर से वन शोभित, दोनो की छवि अति प्यारी ॥
काई छाई रहती जल पर, कही न होते जल दर्शन ।
सकल देह परिव्याप्त समझ लो, चेतनत्व अथवा स्पर्शन ॥
कछुवा एक वहां पर रहता, लिए हुए अपना परिवार ।
देश विदेश यही था इसका, लघु या बड़ा कहो ससार ॥
भोजन वहो वही जल मिलता, जाना नही कमाने को ।
बुरा नही बतलाया उसने, अपने लिए जमाने को ॥

एक बार की बात

तेज पवन चलने से काई, हटी कही पर से इक दिन ।
कछुवा कर पाया है सुख से, पूर्ण चन्द्रमा के दर्शन ॥
तारा मंडल की शोभा से, सुन्दर लगता नीलगगन ।
देख अपूर्व छटा वह कछुआ, मन ही मन में बना मगन ॥
कभी न देखा दृश्य आज सा, वृद्ध बना रहते-रहते ।
थक जाऊँगा इसकी महिमा, परिजन से कहते-कहते ॥
जाऊँ इसके पास, पास मै, अपने इसे बुला लाऊँ ।
मिले तोलने के साधन तो, नभ को अभी तुला लाऊँ ॥

सोचा, लाऊँ घरवालों को, इसके दर्शन करवाऊँ ।
कितना सुन्दर दृश्य देखलो, हुंकारा भी भरवाऊँ ।।
नही कभी भी देखा उसने, ऐसा भव्य नजारा जी ।
बे बेचारे कब देखेंगे, मैंने जो न पुकारा जी ।।
मैं न दिखाऊँगा जो उनको, कौन दिखाने वाला है ।
सबके साथ आज तक मेरा, प्रेम घनिष्ठ निराला है ।।
गया सभी को ढूढ ढूढ कर, ले आया है अपने साथ ।
रास्ते में बतलाता था वह, दर्शन करवाने की बात ।।

छिद्र रुक गया

जब वह गया तभी पीछे से, हवा चली छाई काई ।
आया कछुआ उसके पीछे, टोली की टोली आई ।।
कही न दर्शन हो पाए, अब ढूढ ढूढ़ कर थके सभी ।
कछुआ बोला इसी स्थान से, देख गया था अभी-अभी ।।
समझ नही पाया मैं कैसे, होते दर्शन अभी नहीं ।
दर्शन मैंने किए न होते, लाता तुमको कभी नही ।।
ठहरो थोड़े समय और सब, अब दर्शन हो जायेंगे ।
अगर नही दर्शन हो पाए, नही दुबारा आयेंगे ।।
गया इधर से उधर उधर से इधर सरोवर मथ डाला ।
नहीं चन्द्रदर्शन कर पाया, कछुआ वह भोला-भाला ।।

कथासार

जंबू बोले उस कछुवे के, आया अवसर हाथ नही ।
क्या अपने पर इसी कथा की, ढाली जाती बात नहीं ।।
घरवालो के स्नेहजाल में, गुरुमुख दर्शन छोड़ चलूँ ।
पुनः ढूँढ़ने उस दर्शन को, योनि-योनि में क्या न रुलूँ ।।
त्यागो स्नेह-स्नेहियो का तुम, उठो स्वर्णश्री जाग उठो ।
चोर लुटेरो से दुनिया में, होकर चतुर न आप लुटो ।।

त्यागा नहीं, अभी फिर क्या तुम, कर पाओगी त्याग कभी ।
किसी जन्म में किसी समय में, कम क्यो होगा राग कभी ॥
समझ गई है सत्य स्वर्णश्री, जंबू के समझाने पर ।
सुलझे व्यक्ति न उलझा करते, धूर्त्तो के उलझाने पर ॥

रूपश्री के विचार

सुना रूपश्री ने चुप रहकर, प्रिय प्रिय और प्रियाओ को ।
व्याकरणी सुनता कहता है, प्रत्यय और क्रियाओं को ॥
अपना साहस कम होने का, प्रश्न उठाये कौन भला ।
कुछ कहने से पहले कैसे, हो सकता है मौन भला ॥
कहा रूपश्री ने अवसर दो, मैं भी कह पाऊँ दो शब्द ।
कौन दूसरे को देता है, अपना क्रम, शुभअवसर लब्ध ॥
सुनते अगर न आप, किसे हम अपनी व्यथा सुना पाती ।
सुनता नही हमारी कोई, भरी-भरी रहती छाती ॥
धन्य आपको शांतभाव से, हम सबको सुन लेते हो ।
बहुत शांति से बहुत प्रेम से, प्रत्युत्तर भी देते हो ॥
हमें हारने का न दुःख है, सुख है प्रिय की देख विजय ।
पति प्रतिभाशाली होने से, स्त्री के होते पाप-विलय ॥
लोभ करो मत मोक्षसुखो का, सयम का भी लोभ बुरा ।
किसी क्षेत्र मे किसी पात्र मे, पीने पर है सुरा-सुरा ॥
फलास्वाद मे फँसे बाज के नही मृत्यु भी नजर चढ़ी ।
ज्यो-ज्यो फल की प्राप्ति बढ़ी, त्यो तृष्णा दूनी और बढ़ी ॥

बाज की कथा

विन्ध्याचल के निकट विकट वन, वन में वनराजा था एक ।
नही दूसरे वनराजा को, वनराजा सकता है देख ॥
वन जीवो से उसे नही भय, उससे सारे भय खाते ।
जो भी उसके सम्मुख आते, वे भय से ही मर जाते ॥

शाकाहारी सिंह न होते, सिंह खेलते स्वयं शिकार ।
जीवों की हिंसा करने का, उसका जन्म सिद्ध अधिकार ।।
कोई साथी कोई शस्त्र न, नहीं किसी से वैर-विरोध ।
कोई इस पर क्रोध करे, पर कभी न ले पाता प्रतिशोध ।।
विना क्षुधा वह किसी जीव की, हिंसा करता नहीं सुना ।
इसी जाति की हत्या करना, ऐसा उसने नहीं चुना ।।
जो मिल जाए वही ठीक है, नर हो पशु हो पक्षी हो ।
भले किसी ने भले किसी को, अमरपट्टिका वक्षी हो ।।

एक दिन की बात

एक हरिण को मार एक दिन, खाया उसने कोमल मांस ।
अति खानेवाले ले पाते, बहुत कठिनता पूर्वक सांस ।।
पीकर रक्त बुझाई प्यासा सोया तरु की छाया में ।
कोई काम नहीं हो तब ही, आलस आता काया में ।।
नींद आ गई ऐसी गहरी, मुंह खोले वह हरि सोया ।
मानो उसने बेहोशी में, ज्ञान स्वयं का था खोया ।।
उसकी तीखी दाढाओ में, मांस खड़े थे फँसे हुए ।
दांत कुचरनी विना निकलते, अन्न खंड क्या धंसे हुए ।।
सोए हुए शेर के मुख में, देख मांस के कुछ टुकड़े ।
बाज एक ललचाया खाने, भूल गया सारे दुःखड़े ।।
उसने ऐसा कभी न सोचा, सिंह अगर जग जायेगा ।
तू क्या खायेगा तुझको भी, सिंह समूचा खायेगा ।।
स्वाद जीभ का उसे लगा था, कहां सोचने देता मन ।
देख पथिक ने दशा शांति से, दिया बाज को उद्बोधन ।।
भोलेपंछी ? क्यो भूले हो ?, आते जाते आप कहां ।
वनराजा इस दुश्चेष्टा को, कर सकता है माफ कहां ।।

सुना न माना कहना सुन्दर, अन्दर आता जाता है ।
जो भी पाता वह ले आता, बाहर आकर खाता हो ॥
चोंच मसूडो से टकराई, नीद उडा सिह की तत्काल ।
उसने इसे दबोचा मुख मे, महालोभ ले आया काल ॥

कथा सार

सुनो प्राणप्रिय ! साथिनियो की, हितशिक्षाएँ मानो जी ।
केवल अपनी बात, जिद्द हठ, नही अंततक तानो जी ॥
संयम के आस्वादों मे हो, छिपे हुए है भारी कष्ट ।
प्राप्त सुखो को और स्वय को, करो नही हाथो से नष्ट ॥
तन न बदलता, जन न बदलता, जीवन नही बदलता है ।
बाना एक बदलता बाकी, वहां सभी कुछ चलता है ॥
क्रोध वहीं है अह वही है, कपट वही है लोभ वही ।
सयम लेने से कोई भी, हो जाता है नही सही ॥
ईर्ष्या वही वही इच्छाएँ, वही सभी पर ममता-भाव ।
समताभाव अगर होता हो, यही करो वह समताभाव ॥
छोडो दोष, वेष मत छोडो, छोडो घर मत, छोडो मोह ।
सब कुछ छोड दिया है मैने, करो न ऐसा ऊहापोह ॥
कुछ न छूटता इस मन से तो, ऊपर से छोडा जाता ।
जिसे छोड कर जाते हो वह, पीछे सब दौड़ा आता ॥
घर से भी अतिमात्रा मे, सब मिल जाता आगे आगे ।
ऊपर से वह ठस्सा मारो, हमने भोगो को त्यागे ॥
करो साधना बैठ शाति से, सधजाए तो साधे आप ।
नही साधना बुरी, बुरा है, सयम का सब क्रिया-कलाप ॥
अधिक अयोग्य कहा जो मैने, उसे माफ कर देना आप ।
मन की बात नही कहने से, नही निकल सकती है भाप ॥

जम्बू का जवाब

जम्बू बोले - सुनो रूपश्री, मैं तृष्णा का करता त्याग ।
संयम में लालच कब होता, यथा शांत पानी में झाग ॥
आप कौन हो मेरी मैं हूँ, कौन आपका साथी जी ।
साथी होते नही कभी भी, दुलहा और बराती जी ॥
पिता पुत्र माता भ्राता सब, नाते स्वारथवाले है ।
स्वारथवाले लोगों ने ही, नातो को संभाले है ॥
काम किसी से पड़े नही जब, पड़ जाये तो पता पड़े ।
सुख में जैसे खड़े रहे थे, दुख मे भी क्या रहे खड़े ॥
कस लेते है सभी किनारा, जब भी आया करते कष्ट ।
कष्ट उठाने कष्ट बटाने, कौन समय-धन करता नष्ट ॥
तीन मित्र की कथा सुनो तुम, पहचानो जग के नाते ।
जो न समझते ऐसे, उनको उदाहरण दे समझाते ॥

तीन मित्र की कथा

सुन्दर पुर सुग्रीव, नरेश्वर था जितशत्रु बडा न्यायी ।
न्याय-नीति सपन्न राज्य की, आय शाति होते स्थायी ॥
मुख्य सचिव चेतन नामक था, सच्चा सादा सरल विशेष ।
व्यसनी कपटी अभिमानी से, रहता दूर हमेश हमेश ॥
सचिव प्रिया का नाम सुमति था, सुमति दिया करती पति को ।
नही बिगडने देती पति को, गति को उत्तम संगति को ॥
तोन मित्र थे बहुत पुराने, नित्यमित्र था पहला मित्र ।
नित्यमित्र को देखो चाहे, देखो मुख्य सचिव का चित्र ॥
जीव एक दो काया वाली, इनसे चली कहावत थी ।
जो मंत्री की आदत थी वह, नित्यमित्र की आदत थी ॥
सुख में दुख मे साथ हमेशा, नित्यमित्र को पाया था ।
इसीलिए ही नित्यमित्र को, पहले मित्र बनाया था ॥

पर्वमित्र था मित्र दूसरा, पर्व पर्व मिलने आता ।
खिलने का जब समय देखता, कमल तभी खिलने जाता ।।
नाम प्रणाममित्र था जिसका, बना तीसरा मित्र भला ।
चित्र बनाये चाहे जितना, आती हो जब चित्रकला ।।
मित्र बनाना चित्र बनाना, बिना कला का काम नहीं ।
कलाकार को विना किए कुछ, मिलता भी आराम नही ।।
जब मिलता तब करता था वह, मित्र प्रेम से एक प्रमाण ।
कभी नही घर आता जाता, चाहे कितना ही हो काम ।।

राजा का कोप

वसुधाधिप का मुख्य सचिव पर, हुआ एकदा कोप बड़ा ।
सिद्ध न हो पाया सुनने मे, आया था आरोप बडा ।।
निष्कासित कर दिया देश से, मत्री जी को नरवरने ।
रहने का यह अर्थ समझ लो, अभी चाहता है मरने ।।
मत्री वन मे चला गया है, छोड़ राज्य की सीमा को ।
नही मिटाये किन्तु न बढने, दे औषधि एग्जीमा को ।।
समयातर छुपकर मंत्रीश्वर, घर पर आकर यो बोला ।
मुझको शरण चाहिए सुनकर, द्वार स्वय स्त्री ने खोला ।।
शरण आपको देने से ही, हम सब मारे जायेगे ।
अधिक देर रुकने से दुश्मन, अपनी चुगली खायेंगे ।।
कहकर बंद किया दरवाजा, मत्री ने पाया न शरण ।
स्त्री, धन, सुत, का स्नेह परख कर, मत्री का हो गया मरण ।।
नित्य मित्र के पास गया वह, बोला मुझे बचालो जी ।
कोई स्थान सुरक्षित देकर, स्नेह पुराना पालो जी ।।
बोला मित्र आपके बदले, हमको मरना नही पसन्द ।
जाओ भागो तुरत यहां से, भाषण अपना कर दो बन्द ।।

पर्वमित्र के पास गया पर, उसने कोई बात न की ।
अन्य दिशाएँ क्या देती, जब नही पूर्व ने किरणें दी ।।
गया प्रणाममित्र के घर पर, उसने खोला दरवाजा ।
मंत्री बोला मेरे से है, असंतुष्ट अपना राजा ।।
निष्कासित हूँ, लांछित भी हूँ, जाऊं कहां-कहां जीऊं ।
रहूँ कहां दुख कहूँ किसे मैं, क्या खाऊँ फिर क्या पीऊं ।।
मुझे आपसे मिल सकता है, स्थान और सम्मान बड़ा ।
स्नेहदान से सहसगुना ही, माना जीवन-दान बड़ा ।।
आओ, रहो, आपका घर है, डर है हमें नही कोई ।
हम जीयेंगे और मरेंगे, साथ-साथ मे दोनो ही ।।
सेवा करने का शुभ अवसर, दिया कृपा की मेरे पर ।
जब पडता है काम तभी ही, आता मित्र मित्र के घर ।।
राजा को मैं समझाऊगा, कोप शात हो जायेगा ।
मान सहित फिर उसी स्थान पर, भूपति स्वयं बुलायेगा ।।
प्रतिभाशाली मुख्य सचिव को, खोकर नृप पछतायेगा ।
काम दूसरो का अपना भी, सबके सम्मुख आयेगा ।।
क्रोध शांत हो जाने पर ही, बोध हुआ करता है नित्य ।
आधी मेघघटा कितने दिन, ढक कर रख सकते आदित्य ।।
रखा छुपा करके मत्री को, पता किसी को नही मिला ।
धन्य प्रणाममित्र को जिसने, मुख्य सचिव को लिया जिला ।।

पुनः वही स्थान

किया प्रयास प्रणाम मित्र ने, राजा का मन शांत हुआ ।
मुख्य सचिव के प्रति क्यों कैसे, इतने दिन मन भ्रात हुआ ।।
स्थिति सम्मुख आ गई सही सब, नरपति करता पश्चात्ताप ।
मुख्य सचिव को लगा चाहने, बुलवाने को फिर से आप ।।

कहा प्रणाममित्र ने कोशिश, करूं उसे बुलवाने को ।
जिम्मेवारी लेता हूँ मैं, मन्त्री को मनवाने की ।।
दो दिन बाद किया है हाजिर, राजसभा में लाकर के ।
भूपति अति हर्षित होता है, मुख्य सचिव को पाकर के ।।
घर खुश, पुर खुश खुश-खुश हर नर, मन्त्रीश्वर के आने से ।
नित्यमित्र के पर्वमित्र के होता क्या पछताने से ।।
धन्य प्रणाममित्र ने साहस-भरा उठाया कदम भला ।
भले लोग से छुपा न रहता, कौन बुरा है कौन भला ।।

कथासार

जम्बू बोले सुनो रूपश्री, कथासार जो भी निकला ।
स्वार्थी लोगो के जीवन का, चित्र दिया तुम को दिखला ।।
किसके लिए यहाँ पर रुकना, खोना अपना जन्म अमोल ।
आंखे खोल तोलकर मति से, बोलो निर्णय वाले बोल ।।
सत्य समझ मे आ जाने से, हुई रूपश्री पति के साथ ।
पुष्कर नही तर्क से कटती, बड़े बुद्धिमानों की बात ।।
रही एक ही एक तर्फ अब, एक तर्फ में सात हुई ।
बात हुई न स्वय की जब तक, डरने की क्या बात हुई ।।

जयश्री का प्रयत्न

जयश्री ने जम्बू के सम्मुख, जय पाने का किया प्रयत्न ।
नारी रत्न कीमती होता, चाहे होते है नर-रत्न ।।
सातो हार गई तो क्या है ?, जयश्री इन्हें जितायेगी ।
मेरे मुख के साथ सभी ये, सुखमय समय बितायेगी ।।
निश्चित मेरी जीत हार का, प्रश्न नहीं उठता हे नाथ ! ।
स्त्री का त्याग किए जाने की, नही समझ में आती बात ।।
स्त्री से अलग-थलग रहकर क्या, पुरुषजाति बनती पावन ।
हो न अगर आषाढ भाद्रपद, कैसे हो सकता सावन ।।

अपने ही उत्पत्तिस्थान को, नर्क बताता तर्क फिजूल ।
इससे बढकर पुरुष जाति की, क्या हो सकती कोई भूल ॥
नरसुख, स्त्रीसुख, सुत सुख, धन सुख, कहने का क्या समझे अर्थ ।
सुख के ये साधन है सारे, साधन विना सिद्धियो व्यर्थ ॥
नरदुख, स्त्री दुख, सुत दुख, धन दुख, कहने का क्या समझे अर्थ ।
दुख के ये साधन है सारे, साधन विना सिद्धियो व्यर्थ ॥
लिए एक के जो सुख है वह, लिए दूसरे के है दुःख ।
सुख दुख की परिभाषा का रुख, हो जाता है भाव-प्रमुख ॥
वास्तव में सुख दुःख नही कुछ, केवल सकल कल्पना मात्र ।
जो विद्या ही नही बताओ, कैसे कोई उसके छात्र ॥
मोक्ष-सुखों की मधुर कल्पना, बनी आपका आकर्षण ।
नही मोक्ष का नाम जहाँ पर, समझो वह भी है दर्शन ॥
जग की माया जो सपना है, फिर क्यो मोक्ष नही सपना ।
औरों का चिन्तन भी चिन्तन, चिन्तन माने जो अपना ॥
आत्मिक देहातीत सहज सुख, सुनने में हैं मधुर-मधुर ।
पाने में कुछ नही, बताने में ही है जो प्रचुर-प्रचुर ॥
कथा चट्टतापस की सुनकर हँसी सभी को आयेगी ।
मोक्ष-सुखो की मधुर कल्पना, फर फरकर उड जायेगी ॥

चट्टतापस की कथा

कौशिक गांव चट्ट था तापस, जिसके शिष्य अनेक बने ।
धर्माधर्म विवेक विना सन्यासी देखादेख बने ॥
लाते भिक्षा घर घर से वे, रहते अपने आश्रम मे ।
परिवर्तन करते न प्राप्त-श्रुत-सगृहीत जीवन क्रम में ॥
गुरु भी अधिक नही जब ज्ञानी, शिष्य कहां से हो ज्ञानी ।
नदी सदानीरा क्या होगी, नही स्रोत में जब पानी ॥

सपने के लड्डू

तापस ने सपने में देखा, भरा लड्डुओ से आश्रम ।
टूटी रात नीद भी टूटी, टूटा नही चित्त का भ्रम ॥
सोचा आज गांव को न्योता, दिलवा दूं मैं खाने का ।
भरा लड्डुओं से है आश्रम, अवसर नही गवाने का ॥
खाते है हम सदा गांव का, आज गांव को दे भोजन ।
विना पुण्य के कब हो पाता, प्रीतिभोज का आयोजन ॥
शिष्यों को आदेश सुनाया, जाओ न्योता दे आओ ।
सुन्दर मंडप शीघ्र सजाओ, गांव जिमाओ यश पाओ ॥
गये शिष्य न्योता दे आये, आये सारे लोग चले ।
मडप में बिठलाए बैठे, बाते करते लोग भले ॥
आज समूचा गांव साथ में, भोजन करने आयेगा ।
बाबा अपनी तपःशक्ति का, चमत्कार दिखलायेगा ॥
बोले शिष्य पत्तले रख दी, रख दी गई गिलासे भी ।
परोस ने जो है वे लड्डू, मिले न आसे-पासे भी ॥
भरा लड्डुओ से तो आश्रम, कहते तुम कुछ नही मिला ।
गुरु के विना ज्ञान कब मिलता, गहन ज्ञान का गहन किला ॥
जाओ चद्दर ओढो सोओ, देखोगे सपना भरी ।
भरी लड्डूओ की ले थारी, परोसना वारी वारी ॥
हँसे शिष्य आ सबसे बोले, केवल सपना आया था ।
देख लड्डुओ के ढेरो को, सबको यहा बुलाया था ॥
जाओ सभी पकाओ खाओ, भूलो नही भरोसे पर ।
खाना खिलवाया जायेगा, तापसजी के दोसे पर ॥

कथासार

सपने मे जो देखे लड्डू, उनसे भर पाया न उदर ।
जैसे भूखे आये वैसे, गये लौट घर नारी-नर ॥

कल्पित स्त्री संतान न देती कल्पित अन्न न भरता पेट ।
कल्पित सलिल न प्यास बुझाता, कहीं न इसमें त्याग-लपेट ।।
कल्पित वसन न लाज ढांकते, कल्पित तरु की क्या छाया ।
कल्पित स्नेही स्नेह न देता, कल्पित मन की क्या माया ।।
कल्पित मोक्ष न शांति प्रदाता, समझो जग सम मायाजाल ।
इससे भगना उसमें फँसना, मतिमत्ता का नही सवाल ।।

जम्बू का जवाब

जम्बू बोले सुनो जयश्री, नही मोक्ष-सुख कल्पित है ।
अल्पज्ञो से उदित नही यह, सर्वज्ञों से जल्पित है ।।
भोग मात्र दुख होने पर भी, केवल सुख माना जाता ।
"लालापानमिवाङ्गुष्ठे" का ध्यान नही किसको आता ।।
त्याज्य काम है, त्याज्य क्रोध है, त्याज्य अह सह मद-माया ।
त्याज्य भोग है त्याज्य देह है, त्याज्य पुद्गलो की छाया ।।
बन्धन सभी त्याज्य है मन के, त्याज्य जगत की ममताएे ।
त्याज्य वही सब जिसे भोगकर, आखिर में हम उकताएँ ।।
पुत्र पिता माता स्त्री भगिनी, जितने भी जग के नाते ।
आज किसी से जुडते कल ये, अन्य किसी से जुड जाते ।।
एक जोडते एक तोडते, एक छोडते लेते एक ।
एक-एक करते करते ये, हो जाते क्या नही अनेक ।।
जुडने और विछुडने का क्या, कही दीखता भी है अन्त ।
इसीलिए इन संबधो को, बतलाया है गया अनन्त ।।
स्नेह स्नेह से, द्वेष द्वेष से, बढता जाता है दिनरात ।
इन्हे घटाने की कोई भी, करता देखा गया न बात ।।
स्नेह द्वेष ही दो बन्धन है, नर-नारी बनते माध्यम ।
परपरा से अलग नही है, चाहे तुम हो चाहे हम ।।

अपरिग्रह अस्तेय अहिंसा, सत्य शीलव्रत सयम है ।
अपने मन पर शासन करना, सत्य अर्थ में शम-दम है ।।
करे किनारा हम भोगो से, लोगो की मत लाओ बात ।
दुलहा एक हुआ करता है, होती कितनी बड़ी बरात ।।
आग इन्धनो से बुझने का, ले सकती है नाम नही ।
शांत तृप्त हो पाता वैसे, कभी काम से काम नही ।।
क्रोध क्रोध से अह अहं से, माया से बढती माया ।
लोभ लोभ से बढता जाता, क्या न देखने में आया ।।
जिसे छोडना हो उसके ही, चला जाय विपरीत भला ।
अन्त उसी का पा जाने की, परम श्रेष्ठ है यही कला ।।
सिर्फ त्यागते जाने से ही, रह जाता है शुद्ध स्वभाव ।
जल के बिना बिना बादल के, नही भडक सकता छिड़काव ।।
एक बार हो बार बार हो, दुनिया के है भोग वही ।
सुख संयोग वियोग वही, विनियोग वही उपभोग वही ।।
एक बार की भूल, दुबारा, करने वाला करता भूल ।
भूल भूल पर हो जाना ही, मानवता के प्रति प्रतिकूल ।।
विषय वासनाओ में फसकर, दुख पाया ललिताङ्ग कुमार ।
रोचक प्रेरक उदाहरण से, लेना हमे चाहिए सार ।।

ललिताङ्ग की कथा

पुर वसत भूपति सत्यप्रिय, प्रजा सुखी धन-धान्यो से ।
मान्य वही व्यवहार जगत का, मान्य हुआ गणमान्यो से ।।
रूपवती पटरानी ने तो, पाया केवल रूप भला ।
सदाचार का शीलधर्म का, बीज वहाँ पर नही पला ।।
कुलाचार की परंपरा का, इसने भय खाया न कभी ।
प्रभु का सत समागम का, गुण कीर्त्तन करवाया न कभी ।।

पतिव्रत्य का पालन करना, इसने माना धर्म नही ।
वह क्या स्त्री जो साहसपूर्वक, बन पाये बेशर्म नही ॥
दुराचार मे कपट क्रिया मे, बड़ी कुशल थी रानी जी ।
राजा से अज्ञात सभी कुछ, जान रहे थे ज्ञानी जी ॥
नृप को पटरानी का यौवन, रूप, स्वभाव सुहाते थे ।
जब भी वे महलो मे आते, शाति प्रेम सुख पाते थे ॥

चर्चा का स्थल

खड़ी झरोखों मे हो करके, झांका करती सडको पर ।
करती बुरे इशारे डोरे, डाला करती लडको पर ॥
लोग बताते बुरा, झुकाते नजरे अपनी भू की ओर ।
मन मन मे कुछ कहते जाते, लेकिन नही मचाते शोर ॥
भद्रपुरुष पहले से ही तो, करते ऊची नजर नही ।
रात नही हो उसका कोई, मध्य नही है फजर नही ॥
नेत्र लडा लेता कोई नर, खडा नही रहता पलभर ।
सावधानता वरती जाती, काम क्रोध के छल बल पर ॥

ललिताङ्ग आया

निकला उधर अचानक आकर, छैल बडा ललिताङ्ग कुमार ।
पुर की बुरी स्त्रियाँ थी उसके, लिए वासना का बाजार ॥
इसके रूप रग पर मोहित, रानी ने भेजी दासी ।
बुला रही है रूपवती जी, बनकर दर्शन की प्यासी ॥
देख निमंत्रण रानी जी का, फूल उठा ललिताङ्ग कुमार ।
भावी खतरे की घंटी को, भूल उठा ललिताङ्ग कुमार ॥
अवसर देख चतुर नर पहुँचा, रूपवती रानी के पास ।
दासी ने इस मधुर-मिलन का, पाया मधुर-मधुर शाबास ॥
रानी ने सोचा यह दासी, कही खोल दे भेद नही ।
जिसने काम बनाया उसको, देने में कुछ खेद नही ॥

हीरों वाला हार प्यार से, पहनाया ले दासी को ।
क्या चूमेगी क्या चाटेगी, हार बिना शाबासो को ।।
दरवाजे पर बिठला दी है, पहरा सख्त लगाने को ।
बहुत उपाय किए जाते है, भय का भूत भगाने को ।।

राजा जी आ गये

बीती कुछ ही पले प्रेम की, इतने में भूपति आया ।
भूपति का आना जब जाना, दोनो की धूजी काया ।।
हाय पता होता पहले तो, नही बुलाती आज तुम्हे ।
आता नही स्वयं मैं ही पर, रखनी है अब लाज तुम्हे ।।
मुझे बचालो रूपवती जी !, मेरी मृत्यु पुकार रही ।
नगदी नही अभी तो क्या है, करलो प्यार उधार सही ।।
राजा के आने से पहले, मुझे छिपाओ आप कही ।
प्रगट नही हो जाए देखो, हम दोनो का पाप कही ।।
तुम्हे कौन कहने वाला है, मुझे चढा देगे फांसी ।
जन्म जन्म तक मिट जायेगी, कामजन्य कुक्कुर-खांसी ।।

छिपने का स्थान

पटरानी जी डरी स्वयं ही, कहां छिपाये अपना पाप ।
बहुत बुरे फल देते है जी, स्वकृत पाप स्वीकृत अभिशाप ।।
पाखाने के सिवा स्थान भी, नही दृष्टिगत एक हुआ ।
काम-क्रोध-भय-लोभोदय पर, किसको प्राप्त विवेक हुआ ।।
धक्का दिया गिराया उसमें, लटक गया है बेचारा ।
स्थूल देह नीचे न जा सकी, ऊपर आने से हारा ।।

दुर्दशा के दिन

गन्दा पानी जूठ न बहते, उसके तन पर हो होकर ।
क्षण क्षण जीवन बिता रहा है, रात और दिन रो रोकर ।।

मरने से भी बढकर खस्ता, हालत हुई थका है तन ।
हाय हाय भगवान मुझे क्यों, दिखलाए ऐसे दुर्दिन ॥
इससे जो मैं बच जाऊगा, तो न दुबारा आऊँगा ।
खाऊगा सौगध किसी पर, नजर न बुरी उठाऊगा ॥
बचना कहां ? यहां पर मरना, हो जायेगा हे भगवान ! ।
मुझे बचाओ मुझे बचाओ, दया दिखाओ दयानिधान ! ॥
बीत गये नवमास सास ही, बच पाया है काया में ।
काम क्रोध विषयाशा तृष्णा, रहे नही तन-छाया में ॥

अच्छे दिन आ गये

बरसा मेघ वेग से पानी, निकला नाली से बहकर ।
निकालने के लिए इसे ही, मानो आया हो कहकर ॥
बहता गया कहीं बेचारा, होश नही रहने पाया ।
इसकी जान बचाने को ही, कोई पुरुष वहां आया ॥
देखा इसे अचेत प्रेत सम, किया सचेत लिया पहचान ।
पहुँचाया है मात-पिता के - पास, दयालु बड़ा इन्सान ॥
वैद्य बुलाकर दवा दिलाकर, इसे बनाया फिर से स्वस्थ ।
दुःख दूर होने पर न रहें, दुःख भूलने का अभ्यस्त ॥
उसी महल के नीचे होकर, निकला फिर से यही कुमार ।
खडी झरोखे में थी रानी, कुत्सित करने लगी विचार ॥
दासी को भेजा, जा, लेआ, पर आया सुकुमार नही ।
सोचा इस रानी ने अपने, छोड़े बुरे विचार नही ॥
दासी को न सुना बोला है, खोला अपना भाव नही ।
बुरी भावना का अपने पर, पड़ने दिया प्रभाव नही ॥

कथासार

जम्बू बोले - सुनो जयश्री, विषयों पर क्यों ललचाना ।
दुःख अनत भोगने पर क्या, पुनः उन्ही में फस जाना ॥

शौचालय सम गर्भालय की, स्थिति पूरी नौमासो की ।
आशा बहुत क्षीण हो जाती, जीने के विश्वासों की ॥
प्रबल पुण्य की धाराओ में, बहकर बाहर आया नर ।
बन उन्मत्त प्रमत्त विकारी, भोगो पर ललचाता नर ॥

विचार-दर्शन

शुष्क अस्थियाँ श्वान चूसता, रक्त स्वय का करता पान ।
सुख की आशा मे दुख पाता, विपय एपणा में इन्सान ॥
बालक अपनी लालाओ मे, स्वाद दुग्ध का लेता मान ।
विषयों में आनन्द मानकर, नर दिखलाता निज अज्ञान ॥
प्रवोणता क्या इसको माने, धातु क्षोणता देते भोग ।
विषयो मे आनन्द ढूढते, मन के भोले पंछी लोग ॥
प्राप्ति समाप्ति भोग की देती, स्पष्ट कष्ट की मालाऐ ।
नही शीतिमा दे सकती है, वृहद्भानु की ज्वालाऐ ॥
भोगी सुखी दुखी है योगी, कही नही ऐसा होता ।
योगाभ्यासी प्रभु विश्वासी, क्या देते दुःख को न्योता ॥
जयश्री ! जय की आशा तज दो, करो पराजय यह स्वीकार ।
भरा हुआ है अति कष्टो से, भोगवासना मय ससार ॥
हाथ दिया मेरे हाथो में, दो मेरे सयम में साथ ।
तुमको समझाने मे ही, यह मैंने आज जगाई रात ॥
तुम हम भोगी नही बनेगे, त्यागी - व्रती बनेगे हम ।
नारी नरक नही है ऐसा, स्थापित स्वय करे उपक्रम ॥
जयश्री बोली नाथ आपकी, प्रतिभा पर है हमको गर्व ।
हार गई है हम सारी ही, आप मनाओ जय का पर्व ॥
छोड़ रहे जब आप जगत को, हम भी इसको छोड़ेगी ।
जोड़ेगी संयम से नाता, स्नेह पाश को तोड़ेगी ॥

आठों की आवाज

आठों उठी साथ में बोली, हम संयम अपनायेगी ।
श्रमण बनेगे आप श्रमणियाँ, हम सारी बन जायेगी ॥
पूर्ण परीक्षा लेने को ही, बोले हमने वचन कठोर ।
शाति पूर्ण उत्तर देकर के, मोडा हमें आपकी ओर ॥

पाणिग्रहण से पहले ही शुभ, शीलग्रहण कर लिया सुना ।
संयम अपनाने का रास्ता, पूर्वजन्म के साथ चुना ॥

आप हमारे जीवन साथी, संयम में हम देंगी साथ ।
साथ रहेगी नही कहेंगी, कही असयमवाली बात ॥

अबर आप दिशाएँ हम है, हर है आप मूर्त्ति हम आप ।
आप सिद्ध हम सभी सिद्धियाँ, आगम आप और हम पाठ ॥

आप चन्द्र है हम शुभ ज्योत्स्ना, तरुवर आप बल्लियाँ हम ।
वन है आप केतकी है हम, दीप आप हम ज्योति परम ॥

योगी आप भूति[1] हम अद्भुत, आप अब हम मंजरियाँ ।
आप सरस रस रग सभी हम, सूर्य आप हम पद्मिनियों ॥

आप धराधर[2] धरा सदृश हम, आप क्षेत्र सम हम हैं वाट ।
आप पुण्य हम सभी वासना, हम है रेखा आप ललाट ॥

सिन्धु आप हम हैं सरिताऐ, आप मेघ हम जलबाला ।
नग है आप मुद्रिका हम है, आप अमृत हम है प्याला ॥

आप सौध हम ध्वजा सदृश है, द्वीप आप हम है जगती ।
उज्ज्वल दत समान आप है - हम रसना जैसी लगती ॥

संयम आप धारणा हम है, रूपी आप रूप है हम ।
शतशाखी बड तुल्य आप है, बीज समान हमारा क्रम ॥

---

१ भस्म, २ शेषनाग,

जो प्रासाद आप है उत्तम, बनी वेदिकाएँ सम हम ।
चन्द्रहार सम आप शोभते, मणि सम हम सारी गत भ्रम ।।
चंपक चतुर आप हो प्यारे, हम आठो है पखुडियाँ ।
कंचन आप वर्णिका[1] हम है, डोर आप हम है गुडियाँ ।।
काव्य आप हम उपमाएँ है, हम है किरण अर्क है आप ।
आप अशोक श्रेष्ठ तरुवर है, हम शीतल छाया को छाप ।।
अंतर से अनुराग आप से, वह आता है होठो पर ।
जीत हार का प्रश्न आजकल, आधारित है वोटो पर ।।
आसमान भी रग बदलता, अणुबम के विस्फोटो पर ।
स्थिर सम्बन्ध हुआ करते है, और कही पर नोटों पर ।।
क्रोध दिखाता कभी स्वर्ण क्या, पड़ी हुई सिर चोटो पर ।
ध्यान दयालु दिया करते है, पहले छोटो छोटो पर ।।
यही आप है वही आप है, नही कही भी कोई अन्य ।
हमें कष्ट क्यो होगा कोई, होगा जो भी सयमजन्य ।।
कदम जहां पर आप रखोगे, वही हमारे होगे प्राण ।
सार्थवाह हो आप हमारे, केवल आप हमारे त्राण ।।
ज्ञान आपका ध्यान आपका, स्थान आपका उत्तम है ।
वस्तुस्थिति समझाने के हित, उत्तम किया परिश्रम है ।।
पति-पत्नी का नाम, नाम है, है हम बहने भाई आप ।
पवित्रता की धाराओ मे, धुल जाया करते मन-पाप ।।

जम्बू का जवाब

जम्बू बोले आप सभी की, सराहना मैं करता हूँ ।
लगी विचरने वही जहाँ मैं, बनकर निडर विचरता हूँ ।।

---

१ तेज,

मैंने सोचा था ऐसा ही, जैसा निर्णय करती हो।
सयम-पंथ दुरूहता से, नहीं जरा भी डरती हो॥
बुद्धिमती है आप आपकी, ग्रहणशक्ति भी बहुत प्रबल।
किसी विषय के प्रतिपादन में, पाई गई नही दुर्बल॥
चाहे नर हो नारी हो पर, है दोनो में आत्मा एक।
उदय हुआ हो जिस आत्मा में, धन्य वही है धर्म-विवेक॥
पता आपको होने पर भी, पाणिग्रहण करवाया जी।
कहा नही अपशब्द एक भी, पति का सुख भर पाया जी॥
एक दूसरे से मिलने से, खुलने से खुल जाता भेद।
विना मिलन के विना घुलन के, होते स्नेह शांति विच्छेद॥
लिया धैर्य से काम आपने, स्थिरता रखी विचारो में।
अस्थिरता से जीवन ज्योति धूमिल होती विकारो में॥
धन पाये यौवन पाये का, तन पाये का सार यही।
सादाई को सच्चाई को, जो कहती शृंगार यही॥
विजय काम पर पा लेने का, कठिन कार्य करती नारी।
गलत धारणा है दुनिया की, जो कहती डरती नारी॥

प्रभव का कथन

कहा प्रभव ने जम्बू तेरा, अजब गजब का परखा ज्ञान।
लिए हमारे एक तरह से, क्या न आपही हो भगवान॥
इन आठो को समझाली है, सारी रात जगा करके।
करते साथ भगा करके, क्या करते साथ ठगा करके॥
आज्ञा दो हम सब घर जाये, आज्ञा ले घरवालो की।
होगा क्या आश्चर्य नही, सुन बाते इस स्तरवालों की॥
चोर पांच सौ मेरे साथी, संयम व्रत अपनायेगे।
होंगे सारे शिष्य आपके, हम गुरुदेव बनायेगे॥

स्तंभ की पूर्णाहुति

पुष्कर षष्ठम स्तभ का, हुआ श्रेष्ठ निर्माण ।
पाया है जिसने प्रवर, संयममय शुभ प्राण ।।
दिया गृहिणियों को गहन, श्रीजम्बू ने ज्ञान ।
होता इससे अधिक क्या, पति का स्नेह महान ।।
प्रभव चोर ने पा लिया, पूर्णतया प्रतिबोध ।
रहा न जीवन में कही, मिथ्या गत्यवरोध ।।
एक रात की बात में, कितनी गहरी बात ।
कितने जीवो को मिला, पुष्कर नया प्रभात ।।
लिए पाठको के न क्या, इतना है पर्याप्त ।
पुष्कर पावन प्रेरणा, करली जाये प्राप्त ।।

सप्तम स्तंभ

मङ्गलाचरण

दोहे

स्तंभ सातवे के लिए, संयम स्वीकरणीय ।
परम्पराएं धर्म की, अर्चनीय चरणीय ।।

श्रीजम्बू के त्याग का, पड़ा अचिन्त्य प्रभाव ।
सभी स्त्रियाँ सहमत हुईं, डाले विना दबाव ।।

श्री जम्बू के त्याग का, कितना तेज-प्रताप ।
साथ दे रहे शांति से, मात-पिता भी आप ।।

श्री जम्बू के त्याग का, रहा न लघु आकार ।
सास-ससुर सोलह हुए, साथ साथ तैयार ।।

श्री जम्बू के त्याग का, पुण्य अनन्तानंत ।
चोर पांच सौ प्रभव सह, लेते संयम पंथ ।।

श्री जम्बू के त्याग से, तुला न कोई त्याग ।
किया मुक्ति न आपसे, अपना अंतिम राग ।।

प्रभात वेला

सोया नहीं रात भर घर जब, उसका उठना जगना क्या ? ।
भय से रहित हो गए उनका, भय आने पर भगना क्या ? ।।

श्री नवकार मंत्र गिन गिनकर, उठे सेठ सेठानी आप ।
सोचा पुत्र पुत्रवधुओं पर, किसकी पड़ी परस्पर छाप ।।

क्या सुत संयम लेगा या, रुक जायेगा व्रत लेने से ।
करना या इन्कार पड़ेगा, हमको दीक्षा देने से ॥
ऋषभदत्त उठ आ जाते हैं, प्रियसुत श्री जम्बू के पास ।
किया प्रणाम विनय से सुतने, भरकर आत्मा में उल्लास ॥
बोले पिता जियो सुख देखो, उठो चलो नहाओ धोओ ।
स्वजन मित्र मिलने आयेंगे, त्यार स्वयं पहले होओ ॥
बोले जम्बू पूज्य पिताजी मुझे दीजिए आज्ञा-पत्र ।
संयम लेने की चर्चाऐ, यत्र तत्र फैली सर्वत्र ॥
केवल पाणिग्रहण करने का, आग्रह ही स्वीकारा था ।
मेरा दृढनिश्चय भोगों के, सम्मुख कभी न हारा था ॥

फिर वहीं

बेटा ! जो इतना माना तो, इतना कहना मानो और ।
दीक्षा लेने की इच्छा पर, नहीं लगावो ज्यादा जोर ॥
आओ ओ जम्बू की मां ! यह कहता है क्या सुत प्यारा ।
संयम लेने की इस रट ने, काम बिगाड़ रखा सारा ॥
सुनकर दौड़ी आई माता, बोली बेटे ! छोडो जिद्द ।
जिद्द तानने से क्या कोई, कही कामना होती सिद्ध ॥
मात पिता का क्या होगा, क्या होगा पतिव्रताओं का ।
क्या होगा श्वसुरालय से, कल आई माल-मताओ का ॥
बेटा बोला, ये आठो ही, संयम लेगी मेरे साथ ।
चोर पांच सौ दीक्षा लेंगे, प्रभव प्रमुख तस्कर प्रख्यात ॥
केवल अनुमति पाना ही अब, लिए हमारे शेष रहा ।
जो कुछ कहते अभी आपका, कहना वहीं हमेश रहा ॥

बहुओं से बात

मा ने कहा कहो हे बहुओ !, क्या तुम संयम धारोगी ?
अपने मन को काम क्रोध को, लोभ मोह को मारोगी ॥

क्या देखा-भाला है सबने, होता क्या संसार भला ।
मेरे सुत को रोक न पाई, क्या पाई फिर काम-कला ।।

बहुएं बोली—सुनो सासजी !, कहता सत्य आपका पुत्र ।
संयम में जो शाश्वत सुख है, वह भोगों में मिलता कुत्र ।।

हम चेष्टाऐ करके हारी, उनका है विश्वास अटल ।
अन्तर चक्षु हमारे खोले, बदल दिया है हृदय पटल ।।

सुत की सुतवधुओ की चिन्ता, करो आप मत बिल्कुल जी ।
नही कही भी हम है भोली, भोला नही कही दुलजी ।।

भाग्यवती माताजी हो जो जनमा ऐसा सुत भागी ।
त्यागी बनकर साथ स्त्रियो को, चोरों को करता त्यागी ।।

हम क्या दे उपदेश आपने, सुने बहुत से ही उपदेश ।
अनुमति शीघ्र दीजिए जिससे, ग्रहण करे संयम शुभ-वेष ।।

मात-पिता का निर्णय

बहुवों से मिलकर तुरत, आई पति के पास ।
ऋषभदत्त यों पूछते, कैसे बनी उदास ।।

सुत जायेगा, साथ में, जायेंगी ये आठ ।
दोनों प्रतियाँ देखली, मिला एक सा पाठ ।।

पौत्र प्राप्ति की थी मुझे बहुत बडी अभिलाष ।
व्यर्थ हुआ साबित सभी, किया गया विश्वास ।।

क्यों जनमा पाला इसे, देखे कष्ट अनेक ।
जो जाता यो छोडकर, लेने संयम टेक ।।

रहा न रोने के सिवा, मेरे पास उपाय ।
सभी तरह से हो गई, हाय हाय असहाय ।।

वृद्धावस्था सामने, शिथिल बनेगा अंग ।
सेवा करने के लिए, कौन रहेगा संग ।।

कौन कहेगा नित्य उठ, माजी ! करूं प्रणाम ।
किसे कहूँगी दौडकर, कर आ मेरा काम ।।

पांव दबाने के लिए, बहू न होगी पास ।
घर का सूनापन कभी, देता क्या उल्लास ।।

बोले सेठ न रोइए, धरिये धैर्य अपार ।
करना जो कुछ है हमें, उस पर करे विचार ।।

हम भी सुत के साथ में, ले ले संयम भार ।
इससे बढकर अन्य क्या, होगे भले विचार ।।

सत्य धारणा पुत्र की - कही नही संशीति ।
भीति भरी है भोग में - नही त्याग में भीति ।।

रीति सरल है त्याग की, सरल धर्म की नीति ।
शत में से पन्द्रह गए, रहते पचाशीति ।।

बोल उठी सुत धारिणी, हो जाओ तैयार ।
हम भी सुत के साथ में, त्याग करे स्वीकार ।।

माता पिता उठे बोले है, बेटे ! हम संयम लेंगे ।
आज्ञा दो तुम हमको तब हम, तुमको भी आज्ञा देंगे ।।

जम्बू के सास ससुर

आये, मिले प्रेम से देखा, सुना सभी लेते दीक्षा ।
दीक्षा लेनेवाले देते, दीक्षा लेने की शिक्षा ।।

सेठ और सेठानी बोले, साथ आप भी हो जाओ ।
जाओ हार का भार सौपकर, शीघ्र लौट करके आओ ।।

कन्याओ का और कंवर का, क्या न साथ दे पाते हो ।
सभी तरह से समझदार, क्यो कायरता दिखलाते हो ।।

सुनते ही सोलह के सोलह, साथ हो गये है सोत्साह ।
जान बूझकर दीक्षा लेना, माना जाता नही गुनाह ।।

कौन किसे अब रोके-रोके, सहमत हुए सभी सोल्लास ।
रजोहरण उपकरण आदि की, होने लगी तुरंत तलाश ।।

प्रभव का प्रकरण

प्रभव सोचने लगा हमें जब, संयम व्रत अपनाना है ।
जाते जाते नीतिधर्म का, भव्यादर्श दिखाना है ।।
माल चुराया जो भी हमने, उसे आज लौटा देंगे ।
जिसका है वह ले जाये हम, नही नया पैसा लेंगे ।।
राजसभा में नृप के सम्मुख, स्वीकारेंगे अपना दोष ।
दोष मान लेने पर मन का, शांत स्वत: बन जाता रोष ।।
साहस, नीति सहायक हो तो, सम्मुख आया जाता है ।
पाप सकारण दु:ख निवारण, तब बतलाया जाता है ।।
कोणिक नृप की राजसभा में, प्रभव उपस्थित हुआ सहर्ष ।
मानो अघ आदर्श परस्पर, लगे छेड़ने को संघर्ष ।।
नमस्कार कर कहा नरेश्वर, तस्कर प्रभव हुआ हाजिर ।
जिसने सभी साथियों से मिल, बहुत चुराये जर-जेवर ।।
अब तक जिसको पकड़ न पाये, पकड़ न अब भी पाओगे ।
मूर्त्तिमान साहस को नरपति, उठकर गले लगाओगे ।।
माल सभी संभाल लीजिए, सौंप दीजिए है जिसका ।
हमें पता अब नही रहा है, कब चौरा था किस-किसका ।।
समय नही है पास हमारे, हम सयम स्वीकारेंगे ।
कृत कारित अनुमोदित अघ को, त्रिकरण से धिक्कारेंगे ।।

कोणिक का प्रश्न

चौर स्वय आ राजसभा में, सौप रहे है सारा माल ।
इसका क्या कारण है ऐसा, लगा सोचने पृथ्वीपाल ।।
परिवर्तन पाने का कारण, प्रभव ! हमें बतलादो जी ।
पीछे आप आपके साथी, सुख से व्रत अपनालो जी ।।

प्रभव आप तस्कर हो नामी, और तस्करों के नेता ।
पूछ रहा है यह मन मेरा, वह कैसे संयम लेता ॥
कौन महात्मा मिला आपको, जिससे पाया यह गुरु-मत्र ।
दीक्षा लेने के पीछे भी, अथवा कोई है षड्यंत्र ॥
कही साधुओं के कपड़े भी, नही उठाकर भागोगे ।
वाना एक बहाना होगा माला लेकर जागोगे ॥

प्रभव का उत्तर

कहा प्रभव ने आज रात को, चोरी करने को आये ।
वहां जागते श्री जम्बू ने, हम सब को भी समझाये ॥
स्वय सुधर्मा स्वामी जी से, समझा है जीवन का तत्त्व ।
वही हमे समझाया शाश्वत, जैनधर्म का अमर महत्त्व ॥
अभी सभी हम श्री जम्बू के, साथ महाव्रत धारेगे ।
स्वयं सुधर्मा गणधर अपने, शिष्य हमें स्वीकारेगे ॥

कोणिक का रुख

धन्य धन्य है, जीवन अपना, सफल बनाने जाते हो ।
माल चुराया हुआ सभी यो, लाकर के लौटाते हो ॥
चोरी छोड रहे हो उसके, साथ छोड़ते जग सारा ।
प्यारे पाच महाव्रत लेते, है वे सारे असिधारा ॥
जिस जम्बू ने तुम्हे सुधारा, उसने राष्ट्र सुधार दिया ।
घर बैठे ही राजगृही पर, बहुत बड़ा उपकार किया ॥
जम्बू जाता है तो उसको, जाने दो तुम रुक जाओ ।
मेरी छत्रछाँह में बसकर, शांति सहित प्रभु गुन गाओ ॥
कष्ट न होने दूगा तुमको, तुम हो बड़े साहसी वीर ।
तुमने बहुत बडी रखदी है, राष्ट्र सामने एक नजीर ॥
ऐसे शुद्ध हृदय का हम सब, मिलकर स्वागत करते है ।
नीतिधर्म के आदर्शो पर, मरने वाले मरते है ॥

प्रभव का प्रयत्न

बोला प्रभव मुझे करना है, अब तो प्रभु का भजन भला ।
प्रभु का भजन भला है ऐसा, देता सारे पाप जला ।।
मन की मौज नही कुछ बाकी, मैं भी तो हूँ राजकुमार ।
क्षत्रियत्व के विना कभी भी, बन सकता नर नही उदार ।।
इतने दिन तक अंधेरे में, भटक रहा था मेरा मन ।
श्री जम्बू ने आज अचानक, बदल दिया सारा जीवन ।।
अब भी जो इस जीवन को मै, व्यर्थ गवाऊँ भोगों में ।
तो क्या फर्क रहेगा बोलो, मेरे में जड़ - लोगो में ।।
मुझे नही है कोई इच्छा, किसी वस्तु को पाने की ।
आप बात भी मत करिये, इस दुनिया में रुक जाने की ।।

नृपति की आज्ञा

नृप ने कहा प्रभवतस्कर से, वहुत प्रभावित है हम लोग ।
देख आपका लिए त्याग के, अनुपम अनुकरणीय प्रयोग ।।
चोर, समर्थचोर, चोरपति, दीक्षा ले चोरो के साथ ।
हम क्या माने कभी नहीं यह, मानी भी जायेगी बात ।।
मानें नहीं इसे कैसे हम, जो कुछ होता है प्रत्यक्ष ।
नर जो कुछ कर सकता है, वह कब कर सकता किन्नर यक्ष ।।
ढिंढोरा पिटवा देते है, धन ले जायेगे अपना ।
अपना धन पाने का जिनको, कभी नही आया सपना ।।
आप मुक्त हो सभी तरह से, मुक्त कठ हम गुण गाते ।
चलो आप उत्सव मे शामिल, होने को हम भी आते ।।

लोक चर्चा

घर घर पर यह चर्चा फैली, आज पांच सौ दीक्षा है ।
दीक्षा लेने वालो से लें, लेने लायक शिक्षा है ।।

संध्या शादी करवाई थी, एक नही वे भी फिर आठ ।
आठ शादियो का था अनुपम, और निराला शाही ठाठ ॥
एक एक से रूपवती है, बुद्धिमती है वे सारी ।
खारी नही एक भी सारी, प्रिय को आत्मा सम प्यारी ॥
सुवह सभी दीक्षा लेते है, माता पिता ससुर सह सास ।
देखो, चलो, सुनो, समझो, जो नही बात पर हो विश्वास ॥
चोर पांच सौ प्रभव प्रमुख भी, दीक्षा लेने को जाते ।
राजसभा में माल पड़ा हैं, लेने लोग चले आते ॥
नाम लिखाते अपना अपना, लाते जर-जेवर पहचान ।
जिसको खोया धन मिल जाए, वही भाग्यशाली इन्सान ॥
क्षणभर की सत्संगति का फल, जिसे देखना हो देखो ।
जलती भट्टी में भुट्टे भी, जिसे सेकना हो सेको ॥
राजगृही का अहोभाग्य है, जहाँ हो रहा ऊँचा त्याग ।
प्रभु ने स्वयं संभाल रखा है, शुद्ध त्याग का शुद्ध विभाग ॥
जम्वू से भी बढ़कर हमको, त्याग प्रभव का लगता है ।
तस्कर प्रवर सुधर जाए तो, रवि न पूर्व में उगता है ॥
आते जो न सुधर्मा स्वामी, देते जो उपदेश नही ।
जम्वू सुनता नही, श्रवन कर, होता असर विशेप नही ॥
नियम न लेता ब्रह्मचर्य का, करवाता जो व्याह नही ।
आठों कन्याएं जो मिलकर, करती एक सलाह नही ॥
आते चोर न इसी रात को, अगर चिपकते चरण नही ।
चोर पांच सौ प्रभव चोर का, करते यह अनुकरण नही ॥
जम्वू मे समझाने की जो, होती इतनी शक्ति नही ।
तो यह फल दिखला पाती थी, सत्संगति प्रभु भक्ति नही ॥
जुडी एक से एक कडी तव, लडी बड़ी से बड़ी वनी ।
श्रेष्ठ रत्न देती आई है, श्रेष्ठ रत्न की श्रेष्ठ खनी ॥

जम्बू का आंगन

स्नेही स्वजन तथा श्रावक जन, विना निमन्त्रण ही आये ।
जिसे काम जो मिले उसी में, तन मन से वह जुट जाये ॥
अपनी अपनी मंडलियों में, गानेवाले गाते गीत ।
वैरागी के घर पर होते, गीत जगत के अति विपरीत ॥
सजने लगा जुलूस ठाठ से, विधि से और विधानों से ;
जो सामान चाहिए था वह, जुटा लिया संस्थानों से ॥
राजा कोणिक स्वयं आ गए, जम्बू जी से मिलने को ।
रवि के निकट आ गया मानों, कमल प्रेम से खिलने ॥
जम्बू लगा जोडने जब कर, नरवर कर लेता है थम ।
करना मुझे प्रणाम सदा ही, क्यों न अभी मैं करूं प्रणाम ॥
धन्य आप हो धन्य आपके, माता-पिता-पत्नियां धन्य ।
सास ससुर सब धन्य धन्य है, धन्य धन्य है भाव अनन्य ॥
धन्य आपसे शहर हमारा, हम सब धन्य बने है आज ।
जहाँ सुधर्मा स्वामी जैसे, रहते गणधर देव विराज ॥
दीक्षा लेने आप जा रहे, जिसमें हम भी है शामिल ।
दीक्षा लेने नहीं, किन्तु, गुण गाने के तो है काबिल ॥
दीक्षा लेना और निभाना, चमकाना जिनशासन को ।
चालू रखते श्रेष्ठ प्रकाशन, अपने श्रेष्ठ प्रकाशन को ॥
अपने छत्र चवर रथ घोड़े हाथी पैदल देता है ।
जिनशासन की प्रभावना में मिलने का फल लेता है ॥
राजा के आने से बोलो, कौन नही आता उठकर ।
औषधि अति गुण पा लेती है, पा लेती जब पुट-पुट पर ॥
स्त्रियाँ मिली सौभाग्यवती जो, गीत मांगलिक गाती है ।
जाती नही एक भी वापिस, अन्य अनेको आती है ॥

वैरागी का स्नान

हीरों लालों और मोतियो, वाली चौकी ले आये ।
करवाने को स्नान इसी पर, श्री जम्बू को बिठलाये ॥
तीर्थोदक का कलश उठाकर, कूणिक ने अभिषेक किया ।
परंपरा को धर्मसघ को, मानो एक विवेक दिया ॥
स्नानानन्तर शुद्ध वसन से, वैरागी को दिया सजा ।
शीश मुकुट कानो में कुंडल, आखंडल को दिया लजा ॥
सीमित अग असीमित गहने, पहने जाएं फिर कितने ।
सभी चाहते वैरागी जी, पहने ही इतने-इतने ॥
सुरतरु सदृश सजे श्री जम्बू, सजी पत्नियां सारी साथ ।
अन्य सभी वैरागी सजधज, खड़े हुए है जोड़े हाथ ॥
दीक्षार्थी लोगों का मन तो, शृगारों से सदा परे ।
सोच रहे है ये कपड़े भी, शीघ्र देह पर से उतरे ॥

जम्बू की असवारी

पटह बजाया गया सूचना, पहुँचाने को घर-घर पर ।
हमें सूचना मिली नही क्यो, कहने का आये अवसर ॥
मंगलवाद्यो की मगलध्वनि, मंगलकारी ही होती ।
नही सामने आती जो भी, सूरत हो रोती-धोती ॥
एक सहँस मनुष्यों द्वारा, जिसे उठाया जाता है ।
सदृश वर्ण वय बल युवको, को यहां बुलाया जाता है ॥
चित्रित चित्र विचित्र मनोहर, बनी जालियाँ माणियो की ।
खण खण रण झण आवाजे हो, उठती शुभ किंकिणियो की ॥
देव विमान समान समझ लो, शिविका है कहने का नाम ।
इसे उठाने का भी माना, जाता बहुत बडा शुभ काम ॥
सहसवाहिनी शुभशिविका पर, श्री जम्बू असवार हुए ।
मानो इनके सम्मुख सुरपति, नरपति सकल उतार हुए ॥

चामरयुगल डुलाये जाते, जम्बू के दाएे वाये ।
हिल हिल कर आमन्त्रण देते, कहते सब आते जाये ।।
छत्र छत्र पर छत्र बताते, तीन रत्न ही है अनमोल ।
कोई अधिक न, हीन न कोई सबका एक सरीखा मोल ।।
आठों वधुओ की पालखियो, मात-पिता की पालखियाँ ।
प्रभव प्रमुख की पालखियों से, पालखिया ही पालखियाँ ।।
सबसे पहले आठो मगल विजय ध्वजा पीछे चलती ।
परम्परित पुरुषों के द्वारा, परंपराएे यों पलती ।।
कंबोजा केकाण आरबी, अरोकी पाणीपंथा ।
काश्मीरी तुरकी खुरसाणी, पंचभद्र हय सुखकंथा ।।
कचन जटित पलाण हयो ने, रत्न जटित पहने गहने ।
सूचन तर्जन ताडन कुछ भी, पड़े नही जिनको सहने ।।
हाथी गिरिशिखरो के साथी, श्याम घटाओ सा ले रंग ।
अंबावाडी लगी लगाने, अबरतल से अपना अग ।।
मदभर कुंजर कहते है हम, आये है होने को श्वेत ।
श्री जम्बू से मिल जाएगा, एतद् विषयक शुभ सकेत ।।
धोरी वृषभो के शृंगो पर, किया गया शृंगार भला ।
रथ की शोभा पथ की शोभा, कहती देखो नई कला ।।
पैदल सैनिक नही वैतनिक, चलते पांव मिला करके ।
एक सरीखी पोशाके सब, लाए अभी सिला करके ।।
लाठी वाले भाले वाले, धनुषबाण वाले चलते ।
चोटी वाले दाढी वाले, खेलकूद वाले चलते ।।
म्यानो से निकली तलवारे, कहती है सारे नगे ।
ऊपर से ही हम सम होते, लोक सभी रगे-चगे ।।
वीणावादक मगलपाठक, विघ्नो से रक्षा करते ।
विघ्न नही हो जाए कोई, सभी व्यवस्थापक डरते ।।

मादल कांसल भूंगल भेरी, बाज रही है सरणाई ।
ढमढम ढमढम ढोल बाजते, वीणा सम स्वर गरणाई ॥
टिखिल वाद्य करता है टं टं, डक्का डम डम बोल रही ।
कहते हमको कौन सुनेगा, जहां जरा भी पोल नही ॥
शखध्वनि से ध्वनित दिशाऐ, वही शब्द लौटाती है ।
हम है शून्य यहां मत आओ, हम न शरण दे पाती हैं ॥
राजगृही के प्रमुख पथों से, गुजर रही है असवारी ।
स्थानो स्थानो मैंदानों में, भीड जमा थी अतिभारी ॥

भारी-भीड़

उत्सुकता से उत्कंधर हो, देख रही थी सारी भीड़ ।
किसे याद आती है बोलो, अपनी और पराई पीड़ ॥
कोई नाटे कदवाला नर, आगे आने को धँसता ।
आगे पहुँच नही पाता वह, कही बीच मे ही फसता ॥
कोई बल से कोई छल से, पा लेता है आगे स्थान ।
हमें नही इनको आने दो, आये हुए बड़े महमान ॥
राजगृही का कौना कौना, पहुँच गया बाजारो मे ।
घर आंगन की शोभा सारी, चढ़ बैठी चौबारो में ॥
आने जाने का रास्ता भी, रहा नही है द्वारो मे ।
बात किसी से करने वाले, करते खड़े इशारों में ॥
अपने और पराये की कुछ, जान नही हो पाती है ।
इतना ही हो रहा भान बस, भीड बड़ी सी आती है ॥
पांवो तले पांव दबने से, चिल्लाता नर बेचारा ।
धर्मी और दयालु जनों से, हाय गया मैं तो मारा ॥
सभी प्रबंधक हार गए है, हुई व्यवस्थाऐ सब भंग ।
जनता रुकने सकी न अपनी, रोक न पाई उठी उमंग ॥

नारियों की उत्सुकता

पचरगी परिधानो में सब, सोहागिने सजी भारी ।
शृगारों की बाजी प्यारी, जीत गई जग की नारी ॥

कलि[1], कज्जल, सिदूर, तूर, पय, जामाता प्रिय नारी को ।
स्त्रियां जुड़ी है तुरत देखने दीक्षा की असवारी को ॥

अर्धांजित दृग एक शीश पर, तिलक अधूरा कर आई ।
एक पांव ही धो पाई थी, नूपुर एक पहन पाई ॥

कस्तूरी नेत्रो ने पाई, कज्जल मिला कपोलो को ।
उलटा काम कामिनी करती, सुन लेती जब ढोलों को ॥

चदन लेप लगाया पद पर, वक्षस्थल पर फिर अलता ।
कटिमेखल कंठों में पहना, उत्तावल में सब चलता ॥

हार कमर पर डाल लिया है, कंकण पांवो में पहना ।
पता नहीं रह पाया इतना, कहां कहां का यह गहना ॥

नूपुर डाल लिए बांहो में, ढुलता घृत भी आई छोड़ ।
पीछे रहूँ न देखने में मै, मानो लगी हुई है होड़ ॥

बालक रोते-धोते छोड़े, अंग वसन सब बने शिथिल ।
भले देखने वाले समझे, होगी कोई पूर्ण ग्रथिल ॥

उड़े पवन से जाते देखो, शीघ्र दौडने से परिधान ।
अर्धाच्छादित अंगो का भी, नही स्वय को किंचित ध्यान ॥

औरों के रोते शिशुओं को, अपने समझ उठाती है ।
भोली भाली मतवाली सी, अपना स्तन्य पिलाती है ॥

परिणीताएँ कन्याएँ सम, लगने लगी स्त्रियां सारी ।
कहती नही आजतक निकली, इतनी सुन्दर असवारी ॥

---

१ उवाच—त्तिन्नि थियाँ वालहा, कलि कज्जल सिदूर ।
अे पणि अतिहि वल्लह, दूध, जमाई, तूर ॥

कोई नीचे खड़ी हुई है, कोई खड़ी झरोखे में ।
देख रही है किसी अन्य को, श्री जम्बू के धोखे में ॥
कोई घोड़े हाथी कोई, कोई रथ को निरख रही ।
अच्छा कोई किसे बताती, जैसी अपनी परख रही ॥
कोई कहती बाजे बढिया, कोई कहती पालखियां ।
कोई कहती गीत भलेरे, गाती जाती है सखियां ॥
कोई कहती जम्बू जैसा, हम भी जो पति पा लेती ।
तो दीक्षा लेने को भी सह, आज अभी ही जा लेती ॥
कोई कहती मैं होती तो, समझा लेती जम्बू को ।
नही सुधर्मा स्वामी दीक्षा, मै ही देती जम्बू को ॥
कोई कहती आठ आठ ये, मिलकर लुभा न पाई मन ।
मिली न इनको कामकलाऐ, मिटा न इनका भोलापन ॥
कोई कहती देख लिया वस, चलो चले अपने घर को ।
कोई कहती खड़ी रहो दे, धन्यवाद परमेश्वर को ॥
आज नही जो आई वे सब, पछतायेगी सुन सुनकर ।
पछताना है रुन-झुनिया ज्यों, मन से रुन-झुन रुन-झुन कर ॥

अभिवादन और अभिभाषण

भूपति कोणिक स्वय साथ में, सज्जित होकर आया है ।
कहता मैंने बड़े भाग्य से, उत्तम अवसर पाया है ॥
धन्य पिताश्री श्रेणिक राजा, जिनका सुन्दर शासन काल ।
धन्ना-शालिभद्र सेठो ने, छोड़ा जग का माया जाल ॥
भद्रमना गोभद्रसेठ जी, सेठ सुभद्र बने त्यागी ।
सेठ सुदर्शन की समताऐ, जिनसमता की समभागी ॥
कुसुमपाल, जिनदास, विजय, की, कहानियाँ भी है ताजा ।
मेरे आधिपत्य में ऐसा, केवल आज बजा बाजा ॥

किसी चौक में श्री कूणिक का, अभिभाषण संक्षिप्त रखा ।
ललचा लेते विद्वज्जन ज्यों, स्वाद स्वल्पतम चखा चखा ॥
किसी चौक में श्री जम्बू का, अभिवादन होता भारी ।
अभिवादन लेने से होती, सारी जनता आभारी ॥
किसी चौक में ऋषभदत्तजी, देते थे अपना संदेश ।
किसी चौक में प्रभव प्रमुख का, परिचय-पत्र हो रहा पेश ॥
किसी चौक में दीक्षार्थी जन, क्षमा मांगते जन-जन से ।
कहते अलग हो रहे है हम, मायामिश्रित सगपन से ॥
किसी चौक में पांच मिनिट तक, भजन बोलने की थी छूट ।
धर्म सप्रदायो की होती भजन-भाव मे भक्ति अटूट ॥
सार्वजनिक संस्थाओ द्वारा, किया जा रहा माल्यार्पण ।
सभी चाहते सहयोगो से, आत्मधर्म का उत्सर्पण ॥
जन जन द्वारा किये जा रहे, नियम और व्रत अगीकार ।
दीक्षार्थी को देने लायक, यही योग्य माना उपहार ॥
श्री जम्बू दोनों हाथों से, याचक गण को देते दान ।
वर्षीदान दिया करते ज्यों, जितने भी होते भगवान ॥
राजगृही के नेत्रो में है, केवल श्री जम्बू का चित्र ।
श्री जम्बू के नेत्रो में है, बसा हुआ उत्तम चारित्र ॥
जम्बू बोले दीक्षाओं का, अनुमोदन करते है आप ।
इस पद्धति के द्वारा भी तो, हलके होते मन के पाप ॥
आज नही तो कल दीक्षा का, मंगलव्रत लेना होगा ।
जियो और जीने दो का, सदेश भला देना होगा ॥

गुणशैलक के पास

निर्धारित पथ निर्धारित गति, निर्धारित था दीक्षास्थल ।
निर्धारित था नही देखने, सुनने का वह लोभ प्रबल ॥

राजगृही के प्रमुख पथों पर, घूम चुकी है असवारी ।
बढ़ती जाती जनसंख्या से, बढ़ती भीड़ सदा भारी ॥
हुआ जुलूस सभा में परिणत, आकर गुणशैलक के पास ।
धर्म सभा का आयोजन हो, वहां नहीं हो नीला घास ॥
यहीं विराजित आर्य सुधर्मा स्वामी जी है श्री गणधर ।
वहां नहीं अंधेरा, रहता, जहां श्रेष्ठ मणिधर फणधर ॥
अपने वाहन छोड़ सभी जन, उतरे धर कर मन आल्हाद ।
खमतखामणा कर लेने पर, होते यथा समाप्त विवाद ॥
प्रदक्षिणा कर कर गुरुवदन, तिक्खुत्तो का बोला पाठ ।
तीन वार उच्चारित पारित, गुणित सूत्र की शक्ति विराट ॥
दीक्षार्थी जन परिजन वेष्टित, खड़े हुए सबसे आगे ।
मानो डर कर जग झंझट से, आये लोग यहां भागे ॥

वेष बदला

गये अशोक वृक्ष के नीचे, ईशानोन्मुख हुये खड़े ।
कपड़े गहने लगे हटाने, कर्मबंध सम जड़े पड़े ॥
साधुवेष कर ग्रहण द्रव्य से, साधु बने वे अपने आप ।
साधुभाव सम साधुवेष का, साधु-साधु है पुण्य-प्रताप ॥
आये पुनः सुगुरु सेवा में, हुआ उपस्थित हृदयोल्लास ।
शोक-शोक की छाया को तो, नहीं उतरने को अवकाश ॥
दीक्षा की भिक्षा लो भगवन्, सविनय कोणिक बोल रहा ।
संयम की पावन धारा में, इन्हें दीजिए अभी नहा ॥

दीक्षा से पहले

दीक्षार्थियो ! सुनो सुखपूर्वक, दीक्षा का है मार्ग महान ।
अच्छी तरह समझलो पहले, जो भी इसके लिए विधान ॥
पचमेरु सम पंचमहाव्रत, आजीवन धारन करना ।
दशविध धर्माराधन करते, करते ही होता मरना ॥

छन्द निरोध विनोद विवर्जित, चलना जिन आज्ञा अनुसार ।
गच्छ स्वच्छ रखने को रखना, परपरा आचार विचार ।।
विनय विवेक विशुद्धि वृद्धि, हित करना आगम का अभ्यास ।
समुदाणी भिक्षाशन का भी, स्वाद-रहित लेना मुख ग्रास ।।
मिलने पर मन नही अहता, नहीं गृहस्थों से संसर्ग ।
नहीं मिले तो नही दीनता, प्रवीणता का पहला सर्ग ।।
वचनक्रिया सावद्य किसी से, कहने का तो नाम नही ।
सावद्यानुमोदना से ही, हो जाना बदनाम नहीं ।।
बाल, रुग्ण, नवदीक्षित, गुरुजन, वृद्ध, संतजन की सेवा ।
ग्लानभाव से रहित चित्तकर, करना ही उत्तम मेवा ।।
आप तरे औरों को तारे, विषय-कषाय निवारा जाय ।
भोगे हुए पूर्व भोगों को, मन से नही चितारा जाय ।।
अनियतवासी सहवासी गुरु, शिष्यो से न लड़े झगड़े ।
देहविभूषा करे न किंचित, पांव नही धोये रगड़े ।।
गुरु गुरुवाणी प्रमुख रखे निज, नही होशियारी छांटे ।
तीखे टेढे वचन न बोले, बोये नही कही कांटे ।।
सिंहवृत्ति से निकले पाले, बन जाये न सियाल कभी ।
लिए हुए व्रत नियमो को वह, जाने क्यो जंजाल कभी ।।
छिद्रान्वेषी बने नही हित, शिक्षा सुनकर करे न रोस ।
आगम के अनुकूल धारणा, संघसारणा को बक्सीस ।।
दीक्षा भिक्षा शिक्षा मिलती, जहां तितिक्षा भाव परम ।
साम्ययोग की सत्य परीक्षा, रह जाये जब देह चरम ।।
शिक्षित और विनीत अश्वसम, सुखदाई बन जाना है ।
छोटो और बडो से निभना, अपने साथ निभाना है ।।
जो मन सरल हो गया हो तो, दीक्षा लेना है उत्तम ।
गई न मन की अगर कुटिलता, वेष बदलना महा अधम ।।

निश्चय दोहराया

जम्बू आदि सभी जन बोले, गुरु की शिक्षा धारेंगे ।
स-तितिक्षा दीक्षा भिक्षाव्रत, आजीवन हम पारेंगे ॥
संत आगमाभ्यासी होगें, होगें सारे हितभाषी ।
शुद्ध स्वल्प अशनाशी होगे, होगे सारे मितभाषी ॥
आकाशी जीवन जीयेगे, जीवन की तजकर आशा ।
मरने का भय मरने का मन, दोनो ही है सकाशा ॥
तरने की अभिलाषा करना, सबका ध्येय परम होगा ।
आत्मवादियो निर्ग्रंथो का, भगवन् ! देह चरम होगा ॥
सामाजिक कार्यो में अभिरुचि, लेगे नही कभी भी संत ।
राजनीति से अलगविलग हो, चिन्ता का कर देगे अत ॥
धर्मनीति पर चिन्तन मन्थन, ग्रन्थन करते जायेगे ।
आयेगे जो ले जिज्ञासा, मार्ग उन्हे दिखलायेगे ॥
माधुकरी से जो पायेगे, खायेगे ले स्वाद नही ।
भोगे हुए सुखो भोगो को, कभी करेंगे याद नही ॥
अन्यमनस्क न कोई हममें, कोई भी अवयस्क नही ।
सावधानता प्रधानता है, सिवा स्वय के कष्क नही ॥
हम दीक्षार्थी हम शिक्षार्थी, हम मोक्षार्थी आत्मार्थी ।
स्वार्थी जग से विरतात्माएँ, कहलाती है परमार्थी ॥
करो कृपा गुरुदेव ! सभी हम, शरणार्थी है चरणार्थी ।
तृण की शरण ग्रहण करने से, तर पाता क्या तरणार्थी ॥

दीक्षा दी गई

कोणिक नृप के द्वारा गुरु ने, पाई शिष्यो की भिक्षा ।
सतावीश के साथ पाच सौ, आत्मा ने पाई दीक्षा ॥
प्रथम महाव्रत पूर्ण अहिंसा, हिंसा का विरमण प्यारा ।
त्रस स्थावरगत प्राण प्राण-सम, प्यारा है यो स्वीकारा ॥

मृषावाद विरमणव्रत लेकर, यथार्थता को स्वीकारा ।
वाङ्सयम वाङ्तप को ऐसे, लिया गया त्रिकरण द्वारा ॥
किया अदत्तादान वेरमण, जिसके भेद प्रभेद अनेक ।
मणितृण कंचन प्रस्तर का, है यत्र समानतया उल्लेख ॥
मैथुन-विरमणव्रत का सबसे, अधिक महत्त्व गया आंका ।
दुर्दमनीय काम का जिससे, बाल किया जाता बांका ॥
परिग्रह विरमणव्रत द्वारा, मोह नही रहता तन पर ।
मेरा कहने से पड़ती है, तेरे की छाया मन पर ॥
निशिभोजन विरमणव्रत षष्ठम, पांच समितियाँ आई साथ ।
तीन गुप्तियो की स्वीकृति से, षट्काया के सच्चे नाथ ॥
चलो देखकर चलो पूजकर, सोच समझ करके बोलो ।
गुप्त मंत्रणाऐं किसकी भी नही, कही पर भी खोलो ॥
रखो भंड-उपकरण उपधि जो, सयम के आवश्यक अंग ।
उनके द्वारा कही नहीं हो, संघनियम समता का भंग ॥
मल-मूत्रादिक त्यागे जाये, विराधना को करके दूर ।
जवतक देह रहेगी तबतक, होते दैहिक कार्य जरूर ॥
मन को जाने दिया न जाये, कही घूमने इधर उधर ।
मन के एक सुधर जाने पर, जाता है परिवार सुधर ॥
वचन न निकले मुख से ऐसे, जिससे पाये सयम-घात ।
मुंह से निकली हुई बात क्या, रही किसी मानव के हाथ ॥
काया स्थूल भूल बतलाती, छिपी हुई अपने मन की ।
श्रद्धा श्लाघा यश: प्रतिष्ठा, मिट जाती संयम धन की ॥
बनो रक्खिया बनो रोहिणी, ऐसा लेलो आशीर्वाद ।
संयम लिए दिए का आए, सुगुरु शिष्य दोनो को स्वाद ॥
बने उज्झिया बने भक्खिया, वे निन्दा के भाजन है ।
पष्टभांग के द्वारा इसका, पूर्णतया परिमार्जन है ॥

मति जैसी गति गति जैसी मति, उपजा करती अपने आप ।
उदय हुआ माना जाता है, जिसको प्रबल पुण्य या पाप ।।

एक विशिष्ट कथा

राजगृही मे नृपति जितारी, सार्थवाह धन रहता था ।
भद्रा भार्या बहुत सुरूपा, सुख का निर्भर वहता था ।।
चार पुत्र विनयी सुखकारी, चारों का कर दिया विवाह ।
धन्य सेठ की मानी जाती, स्थान स्थान पर नेक सलाह ।।

सेठ ने सोचा

चार पुत्र है चार स्नुषाऐं, होगा कौन बड़ा छोटा ।
भद्र अभद्र कौन सा होगा, होगा कौन खरा खोटा ।।
नही उम्र से किन्तु अक्ल से, और कार्य से लू पहचान ।
यथा योग्य घर भार सौपकर, करू नया आदर्श विधान ।।
पुरुष प्रधान प्रथाओ को अब, नया मोड़ ही देना है ।
स्त्री को सम्मानित करने का, सुयश प्राप्त कर लेना है ।।
मित्र ज्ञातिजन और कुटुंबीजन, को आमंत्रित करना ।
करना सबके सम्मुख करना, करने से फिर क्या डरना ।।
अक्षत पाच सालिकण दूंगा, जानूगा इससे व्यवहार ।
उज्झित भक्षित रक्षित वर्द्धित, निश्चय का होगा आधार ।।
निश्चित कर प्रात: होते ही, बुलवाया सारा परिवार ।
अशन पान खादिम स्वादिम सब, विपुल किए तत्क्षण तैयार ।।
भली भाति भोजन करवाकर, किया गया सब का सत्कार ।
सत्कृति उपकृति आहृति उपहृति, की जाती सादर स्वीकार ।।
सभी स्नुषाओ को बुलवाकर, धन्य सेठ ऐसे बोले ।
लो ये अक्षत पाच सालिकण, अन्दर से धोले धोले ।।
जब मैं वापिस मांगू तब ये, अक्षतसालि मुझे देना ।
पाच वर्ष के बाद सभी ये, होगे सत्य मुझे लेना ।।

सप्रणाम ले अक्षत कण सब, चली गई है अपने स्थान ।
सोच रही हैं किया ससुरने, आज बड़ा भारी सम्मान ॥

चार विचार

बड़ी बहू ने सोचा ऐसे, कण से कोष्ठागार भरे ।
जब मांगेगे तब दे दूगी, इनको फैकू कही परे ॥
सोच रही है स्नुषा दूसरी, ये पांचों कण खा जाऊं ।
मांगेगे तब कह दूंगी मैं, अभी अभी लो कण लाऊं ॥
तर्क तीसरी लगी उठाने, इसमें कोई गुप्त रहस्य ।
सालिकणो की प्राणों से भी, रक्षा करना मुझे अवश्य ॥
रत्नकरंड सजाकर उसमें, रखे सुरक्षित सब कण ले ।
दे दूगी ये सारे मुझसे, ससुर कहेंगे ला कण दे ॥
विचारणा मे डूब गई है, छोटी बहू उठाकर कण ।
कण देने का कण लेने का, है कोई ऊचा कारण ॥
इनकी खेती करवा करके, वृद्धि करूंगी मैं इनकी ।
वापिस देने में देरी है, निश्चित ही इतने दिन[1] की ॥
अपने पीहर के पुरुषो से, कहा इन्हें बोओ पालो ।
अलग हिसाब किताब बनाओ, खाता एक नया डालो ॥
पांच वरस में पांच कणों से, भरे गये भंडार अनेक ।
एक एक ही रह जाता है, जहा बढाने का न विवेक ॥

पांच वर्ष के बाद

पाँच वर्ष के बाद सेठ को, हुआ वही उत्पन्न विचार ।
दिए हुए उन सालिकणो का, आज किया जाये उद्धार ॥
मित्र ज्ञातिजन और कुटुंबी, आये आमंत्रण पाकर ।
आकर भी खुश होते, सज्जन, खुश भी होते है खाकर ॥

---

१ १८२५ दिन अर्थात् पाच वर्प की।

बैठे हुए सभी के सम्मुख, वहुओ को बुलवाया है ।
दिए तुम्हे जो पांच सालिकण, ले आओ फरमाया है ॥
बडी वहू ने दिए पाच कण, लाकर घर के कोठे से ।
ढंका न जाता रूप स्वय का, पहने हुए मुखोटे से ॥
शपथ दिलाकर सेठ पूछता, ये कण वे हैं या है अन्य ।
सत्य बोलने वाली नारी, मानी जाती नही जघन्य ॥
मैंने उन पांचों को फेंका, ये कण अन्य दिये है ला ।
सत्य मानिये सच कहती हूँ, अपने सर की सोंगद खा ॥
कूडा करकट फेंको घर का, तुम्हे फेंकना आता है ।
नाम खज्जिया रखो स्वयं का, न्याय यही बतलाता है ॥
आई बहू दूसरी उससे, पूछा है सोगध दिला ।
लाओ वे पांचो कण सोंपो, स्पष्टतया आदेश मिला ॥
वे कण नही दूसरे लाई, बोली बहू दूसरी साफ ।
उसी समय खा डाले थे वे, आप करोगे मुझको माफ ॥
हँसकर ससुर सुनाते ऐसे, पीसो पोओ रांधो तुम ।
खाने में हो होशियार तुम, नाम भक्खिया बांधो तुम ॥
उठी तीसरी स्नुषा करडक, लाकर कण वे सभलाती ।
कहती प्रतिदिन इन पांचो की, की मैंने पूजा-पाती ॥
पूर्णतया सभाला इनको, ये पांचो कण है वे ही ।
सेठ प्रशसा करता करते, और प्रशंसा सब स्नेही ॥
नाम रक्खिया रखो स्वय का, जाओ संभालो भडार ।
ताला कूची कर देने का, एक तुम्हे ही है अधिकार ॥
चोथी वहू चतुरतापूर्वक, बोली वे कण आयेगे ।
जब अपने ही गाडी वाले, गाड़ी लेकर जायेगे ॥
वे पाचो कण आये वढ़कर, कई गाडियो पर चढ़कर ।
ज्ञाता का अध्ययन सातवाँ, देखा ही होगा पढकर ॥

सेठ प्रसन्नमना होकर के, देता है इसको सम्मान ।
नाम रोहिणी रखो रोहणा - चल जैसे रत्नों का स्थान ।।
घर का सारा भार तुझे ही, अपने कंधों पर लेना ।
छोटे बड़े सभी कामो में, स्वस्थ व्यवस्थाऐ देना ।।
सेठ स्वयं के स्थान इसे ही, बिठलाते है कर आदर ।
जैसे अपने योग्य शिष्य को, ओढाते गुरुजी चादर ।।
चारों भाई चारों बहुऐ, निकले एक समान नही ।
मानव होने से ही सारे, हो पाते मतिमान नही ।।

कथासार

जम्बू ! कथासार अब सुनलो, जो नर संयम देते छोड ।
उभय भ्रष्ट उन निर्ग्रथो को, समझो बड़ी बहू की ठोड़ ।।
मन से नही पालते, केवल, उदरपूरणा जो करते ।
बहू भक्खिया की श्रेणी को, सारे द्रव्यश्रमण भरते ।।
जिस श्रद्धा से लेते दीक्षा उस श्रद्धा से लेते पाल ।
बहू तीसरी की तुलना में, आते वे निर्ग्रन्थ दयाल ।।
आप पालते पलवाते जो, देते औरों को उपदेश ।
चोथी बहू रोहिणी सम वे, अर्चित आद्दत श्रमण विशेष ।।
तुम्हे तीसरी चौथी सम ही, बनकर करना है भव अत ।
श्री जिनवर की धर्म देशना– में रहते है भाव अनंत ।।
यथा प्रव्रज्या ली है वैसे, पालन करते करो विहार ।
रखे सुधर्मा स्वामीजी ने, सबके सम्मुख उच्च विचार ।।
उपसंहार कथा का करते, लोगों का करते आह्वान ।
प्रवचन श्रवण सत्यदर्शन से, करिये जीवन का निर्माण ।।
कथा विसर्जन हो जाने पर, कूणिक प्रमुख गये निज स्थान ।
जन चर्चा की ओर आपका, 'पुष्कर' खींच रहा है ध्यान ।।

चर्चा का विषय

दीक्षण शिक्षण विधि गुरु सन्निधि, देख दिखाकर आये जन ।
भरा हुआ है आश्चर्यो से, उन सज्जन पुरुषों का मन ॥
ओक ओक में चोक चोक मे, लोक समूहो का यह स्वर ।
देखा नही सुना भी कोई जम्बू जैसा उत्तम नर ॥
चढ़ते यौवन में इच्छा को, मार दिखाया जम्बू ने ।
काम विजय का सरल सरलतम, गुर सिखलाया जम्बू ने ॥
माता को दुमना न बनाने, व्याह रचाया जम्बू ने ।
ब्रह्मवन्हि मे शुक्रकणो को, शीघ्र पचाया जम्बू ने ॥
आठो वनिताओं से सच्चा, स्नेह निभाया जम्बू ने ।
प्रभव प्रमुख चोरों पर अपना, रोब जमाया जम्बू ने ॥
देख दहेज करोड़ों का मन, लोभ न लाया जम्बू ने ।
दीक्षा लेने का न किसी पर, बल अजमाया जम्बू ने ॥
आर्य सुधर्मा स्वामी को गुरु - देव बनाया जम्बू ने ।
गुरुजी से जो सुना उसे, तत्क्षण अपनाया जम्बू ने ॥
बना न अबतक ऐसा नव, इतिहास बनाया जम्बू ने ।
चोर सत बन सकते है, विश्वास जमाया जम्बू ने ॥
माया मोह विषय तृष्णा से, पिंड छुडाया जम्बू ने ।
भव रोगो से संयोगों से, स्नेह तुडाया जम्बू ने ॥
पंथ कटकाकीर्ण जान कर, कदम बढाया जम्बू ने ।
असकीर्णता अशीर्णता को, शोस चढाया जम्बू ने ॥
घर-पर रहते हुए किसी को, नही सताया जम्बू ने ।
कभी किसी को कटुक वचन भी, नही सुनाया जम्बू ने ॥
पडौसियो से लड़े न औरो, को न लड़ाया जम्बू ने ।
धन वैभव को गाड़ जमी मे, नही सडाया जम्बू ने ॥

वाद विवाद न किया किसी को, नही हराया जम्बू ने ।
देख अकेला दुर्बल निर्धन, नही डराया जम्बू ने ।।
घर आये को कभी न खाली, कर लौटाया जम्बू ने ।
अपराधों को नही लाज से, झुक औटाया जम्बू ने ।।
साधार्मिक जन की सेवा को, गले लगाया जम्बू ने ।
मान सहित जीने का साहस, सदा जगाया जम्बू ने ।।
चित्र विचित्र सुने देखे जो, उन्हे भुलाया जम्बू ने ।
रोये हुए किसी के दिल को, नही रुलाया जम्बू ने ।।
धार्मिक सामाजिक कार्यो में, हाथ बटाया जम्बू ने ।
पितृवंश की परंपरा को, नही घटाया जम्बू ने ।।
असहायो की सहायता कर, सुयश कमाया जम्बू ने ।
किसी डूबते हुए व्यक्ति का, हाथ थमाया जम्बू ने ।।
असमय सोकर समय, स्वास्थ्य धन नही गंवाया जम्बू ने ।
धन लुटवाकर सुयश स्वयं का, नही गवाया जम्बू ने ।।
गहन मनन चिन्तन में अपना, ध्यान लगाया जम्बू ने ।
नही योगियो को जो मिलता, वह सब पाया जम्बू ने ।।
किसी व्यक्ति को अतिप्रिय अप्रिय, नही बनाया जम्बू ने ।
सक्रिय जीवन जीया अक्रिय, नही बनाया जम्बू ने ।।
अहकार कर किये दिये का, फल न लुटाया जम्बू ने ।
पड़े किसी के धन वैभव को, नही उठाया जम्बू ने ।।
गुणी गुणज्ञ जनों के सम्मुख, शीस झुकाया जम्बू ने ।
कर्ज फर्ज का जितना उतना, सभी चुकाया जम्बू ने ।।
अपनी गतियो पर जनता को, नही हँसाया जम्बू ने ।
कण फैला भोले पछी को, नही फँसाया जम्बू ने ।।
जिस सौदे में गड़बड उसको, नही तुलाया जम्बू ने ।
एक मौत को परमात्मा को, नही भुलाया जम्बू ने ।।

सजी देह को आभरणों से, नहीं सजाया जम्बू ने ।
नीतिधर्म की नियमितता को, नही लजाया जम्बू ने ॥
खाया जीवन जीने को पर, अधिक न खाया जंबू ने ।
देकर समय-वचन-आश्वासन, नही घुमाया जबू ने ॥
क्रोध दिखाकर रक्त स्वय का, नही सुखाया जबू ने ।
नही ढूकते हुए व्याह को, नही ढुकाया जंबू ने ॥
नही किसी के आगे अपना, कर फैलाया जंबू ने ।
सहज भाव से जो भी पाया, भोग लगाया जंबू ने ॥
अधिक काम लेकर नोकर का, बल न घटाया जबू ने ।
असावधानता में पांवो को, नही कटाया जबू ने ॥
जबू जैसे किसी अन्य का, क्या हम दर्शन पायेगे ।
जंबू के इन आदर्शो को, क्या मिलकर अपनायेगे ॥
अपनायेगे जो न एक गुण, गुण गुणियो के गायेगे ।
अच्छा करने वाले को तो, अच्छा सदा बतायेगे ॥
गुणियो के गुण गाकर सुनकर, होते रसना कर्ण पवित्र ।
पवित्रता की ओर मोड़ता, जो भी अपना होता मित्र ॥
बहुत समय तक जन चर्चा का, विषय एक ही रहा बना ।
चलो उधर ले चले जिधर वे, विचर रहे ले साधुपना ॥

साधु जीवन और जम्बू

अष्टसिद्धियो ने जबू का, किया वरण वर जाना वर ।
शीलवती कुलवती स्त्रिया क्या, भटका करती इधर उधर ॥
प्रभुता[1] ऋजुता[2] समता[3] मृदुता[4], विनयशीलता सत्य प्रधान ।
उदासीनता[5] निरीहता[6] को दिला धीरता[7] के सह स्थान ॥
षष्टम अष्टम दशम व्रतो की, लडी लगादी जम्बू ने ।
श्रुताभ्यास करने की मानो, झड़ी लगादी जम्बू ने ॥

गुरुकुलवास प्रकाश दे रहा, जबू मुनि के जीवन को ।
सास यहां विश्वास ले रहा, जमाजमो करके मन को ।।
लघुवय में ही हो सकता है, विद्याओं का पूर्णाभ्यास ।
जमता और उखड़ता जैसे, लघुवय में मन का विश्वास ।।

सभी क्रियाऐ सयम पूर्वक, करते हुए विचरते है ।
नही किसी से डरते केवल, विराधना से डरते है ।।

नही अकेले जाते आते, रहते नही अकेले ही ।
गाडी रुक जाने पर कोई, साथी उसे धकेले ही ।।

जाति, लोक, कुल वेष लाज से, संयम को होती रक्षा ।
द्रव्य क्षेत्र का काल भाव का, रखो सामने है नक्सा ।।

प्रभु डर गुरु डर परभव का डर, और पाप का डर रखते ।
गुरु भाई का चार तीर्थ का, और आप का डर रखते ।।

चलना हिलना डुलना संयम, स्थिर होना भी है संयम ।
द्रव्य भाव से जगना सयम, फिर सोना भी है संयम ।।

खाना सयम पीना संयम, सयम है भंडोपकरण ।
सयम है संयम जीवन के, लिए उठाया गया चरण ।।

आणाए धम्मो

गुरु आज्ञा से भिक्षा लाते, गुरु आज्ञा से खाते है ।
गुरु की आज्ञा लेकर के ही, बाहर जाते आते है ।।

गुरु आज्ञा के बिना परस्पर, लेते मुनि आहार नही ।
गुरु आज्ञा के विना पढाने का, भी है अधिकार नही ।।

गुरु आज्ञा ले प्रतिक्रमण प्रति - लेखन करते श्रमण सभी ।
गुरु आज्ञा का नही कही पर, कर पाते अतिक्रमण कभी ।।

गुरु आज्ञा से तपश्चरण कर, कर्म खपाते भावों से ।
गुरु आज्ञा से अशन ग्रहण कर, धर्म दिपाते दावो से ।।

गुरु आज्ञा से ध्यान योग की, प्रवीणताएँ करते प्राप्त ।
विनय समाप्त न होने देते, जब तक सकल कर्म असमाप्त ।।

जम्बू का भावनायोग

अनित्य

नित्य नही तन धन यौवन-धन, व्यर्थ ममत्व किया जाता ।
अनित्यता की ओर न अपना, किंचित ध्यान दिया जाता ।।

रहे न रहते नही रहेगे, जो भी आये लोग यहां ।
लोग न स्थिर जब, अस्थिर मानो, सब संयोग वियोग यहां ।।

अशरण

क्षण-क्षण मरण हो रहा अशरण, सभी शरण दे कौन किसे ।
मैं हूँ अमर अमर मेरापन, सत्य बताये कौन इसे ।।

अशरण की अनुप्रेक्षा द्वारा, विजय मृत्यु पर पाई जाय ।
पुद्गल पर ममता करने की भूल न यहां छुपाई जाय ।।

संसार

अभी यहां कुछ कभी यहां कुछ, बन जाता है देहाकार ।
परिवर्तन होते रहने को, पंडित जन कहते ससार ।।
क्या से क्या कुछ बन जाने का, हम को रहता पता नही ।
केवलियों के सिवा अन्य जन, सकते सारा बता नहीं ।।

एकत्त्व

जीव अकेला आया है यह, और अकेला जायेगा ।
अपने किये हुए कर्मो के, भोग अकेला पायेगा ।।
किस पर राग द्वेष फिर किस पर, क्यो न भाव एकत्व करे ।
स्वतः परत्व तत्त्वतः कल्पित, स्थिर बन भाव समत्व करे ।।

अन्यत्व

मेरे से है अन्य सभी, सब - से भी मैं हूँ अन्य सदा ।
मैं न किसी का मेरे कोई, है अन्यत्व अनन्य सदा ।।

जड़ चेतन का साथ नहीं कुछ, दोनो का है भिन्न स्वरूप ।
क्षेत्र कार्य सब अपना अपना, जैसे जल-स्थल छाया धूप ।।

अशुचि

बना अशुचि से शुचि न अंग, जब शुचिता का झूठा अभिमान ।
जिन्हे अशुचिया हम कहते है, उन सारों का यही निधान ।।
जो भी इसे पवित्र बनाते, उनको कर देती अपवित्र ।
दिखलाने के योग्य नही है, काया का आभ्यन्तर - चित्र ।।

आश्रव

आश्रव द्वार कषाय - योग है, जिसके द्वारा होता बंध ।
कर्मवर्गणा का आत्मा से, आश्रव करवाता संबंध ।।
आत्मा के गुण आवृत होते, कर्मास्रव के द्वारा ही ।
आयेगा कचरा उड़ करके, जो हो द्वार उघारा ही ।।

संवर

कर्म प्रवेश नही कर पाये, यही भावना है संवर ।
गृह प्रवेश निषेध हो गया, किया बद जो अपना घर ।।
पुद्गल कर्म न आ पायेंगे, रोक लगा दे बाहर से ।
संवरानुप्रेक्षा का चिन्तन, पुष्कर करना अंतर से ।।

निर्जरा

कर्म बन्ध जो हुआ, हो रहा, उसे तोड देने का काम ।
यही निर्जरा की अनुप्रेक्षा, जिसका नाम अकाम सकाम ।।
सूखे रजकण झडकाने से, छोड दिया करते ज्यो स्थान ।
टूटे हुए कर्म के बन्धन, आत्मा को करते अम्लान ।।

लोक

लोक भरा है जीवो से ही, जीव लोक में रहते है ।
जीव सकर्मा और अकर्मा, भेद प्रथम दो कहते है ।।

सिद्ध शिला पर श्री सिद्धों का, स्थायी शुद्ध निवास स्थान ।
लोक भावना भाने पर भी, बल देते आये भगवान ॥

बोधि भावना

सुलभ सभी कुछ दुर्लभ केवल, बोधि प्राप्त कर लेना है ।
बोधि प्राप्ति करने का, आशय मिथ्यातम हर देना है ॥
सम्यग्दर्शन हो जाने पर, निश्चय होता आत्मा का ।
जिसे किसी भाषा में कहते, दर्शन यह परमात्मा का ॥

धर्म भावना

धर्म भावना द्वारा होता, दश धर्मों का आराधन ।
सिवा धर्म के आत्मशुद्धि का, नही दूसरा है साधन ॥
धारण करो धर्म को तब तो, धर्म हमे भी धारेगा ।
धर्म रसातल में डूबा तो, हम को कौन उबारेगा ॥

जम्बू जीवन की विशेषताएं

अनशन अशमन अकथन विधि को, अपनाया करते जम्बू ।
आतापना उष्ण हिम की ले, सुख पाया करते जम्बू ॥
आगम वाचन श्रवण मनन हित, फरमाया करते जम्बू ।
द्विभर्षी होते न इसी से, शरमाया करते जम्बू ॥
गुरु वच श्रुति को छूते छूते उठ जाया करते जंबू ।
आज्ञा मान कार्य कर झरपट, उठ आया करते जम्बू ॥
जो भी आज्ञा मिली अतर्कित, उसे उठा लेते जबू ।
गुरु आज्ञा से अपना साहस, शीघ्र जुटा लेते जम्बू ॥
गुरु गुरु-भाई शिष्य संघ की, सेवा में तत्पर रहते ।
पुष्कर सुकर नही होने पर, नही किसे दुष्कर कहते ॥
ग्लान वृद्ध नवदीक्षित गुरु भी, जम्बू से बनते आश्वस्त ।
जो जंबू कर देते होता, स्वीकृत कार्य सहर्ष समस्त ॥

गुप्त न रखते जम्बू से कुछ, जंबू रखते गुप्त नहीं ।
गुप्त धर्म की परंपरा को, होने देते लुप्त नहीं ॥
परामर्श जंबू से करते, स्वयं सुधर्मा स्वामी जी ।
शिष्य संघ में श्रीजम्बू मुनि, शीघ्र हो गये नामी जी ॥
आयुष्मन् ! जम्बू ! श्री जिन से, जैसा सुना सुनाता हूँ ।
ऐसा ही है अगर नहीं मैं, कही भूलने पाता हूँ ॥
श्रुत जीवित रखने का सारा, श्रेय तुम्हे ही मिलना है ।
जिनशासन का पत्ता तेरे, हाथ हिलाये हिलना है ॥
प्रभव प्रमुख सारे श्रमणों को, जम्बू का शिष्यत्व मिला ।
दत्त सुधर्मा स्वामी द्वारा, शुचितम संघ प्रभुत्व मिला ॥
बीस वर्ष तक विद्यार्जन कर, चौदह पूरवधारी बन ।
युगप्रधान पद के अधिकारी, दीपाते श्री जिनशासन ॥

जम्बू के गुरुवर

वीर जिनेश्वर की सेवा में, पूरे वर्ष बिताये बीस ।
विचरे छद्मस्थावस्था में, बारह वर्ष सुधर्मा ईश ॥
आठ वर्ष तक केवल पद को, शोभित किया सुधर्मा ने ।
वर्ष पचास गृहस्थाश्रम में, जीवन जिया सुधर्मा ने ॥
सौ वर्षों की आयु भोगकर, जिनशासन की सेवा कर ।
कर कल्याण स्वपर का फिर, कर श्रीजम्बू को निज पटधर ॥

जम्बू के उपदेश

पट्ट सुधर्मा स्वामी जी का, अधिक दिपाया जम्बू ने ।
चार तीर्थ का बेड़ा भव से, पार लगाया जम्बू ने ॥
जो सुनने को आया उसको, ज्ञान सुनाया जम्बू ने ।
झूठे जग की झूठी माया, यों फरमाया जम्बू ने ॥
जिनशासन आत्मानुशासना इनमें कोई फर्क नही ।
अपनी आत्मा स्वर्ग नरक है, इसके आगे तर्क नही ॥

मायाजाल तोड़नेवाले, माया छोडो दुनिया की ।
अपनी पार नही पड़ती क्यो, चिन्ता ओढो दुनिया की ।।
किया, विचारा, किसका होता, झूठा करना क्यों अभिमान ।
दशकन्धर के किए हुए भी, पूरे नही हुए अरमान ।।
द्रव्य क्षेत्र के काल भाव के, सम्मुख सभी अर्थ असमर्थ ।
मैने किया और कर दूगा, कहने का क्या होता अर्थ ।।
दान दीजिए, शील पालिए, तपो तपस्या भावो से ।
भावो शुद्ध भावना भव से, पार उतरिये नावों से ।।

जम्बू को केवलज्ञान

मुनि जीवन का परमलक्ष्य है, कर्मवर्गणा करे समाप्त ।
परिसमाप्त कर्म का होना, होना परमलक्ष्य को प्राप्त ।।
तप तपने का, जप जपने का, खपने का उद्देश्य यही ।
मोहकर्म के मूलनाश से, मिलता आत्म उजास सही ।।
श्री जम्बू स्वामी ने पाया, केवलज्ञान परम उत्तम ।
जिसको पा लेने पर फिर से, उपज नही पाता विभ्रम ।।
पहले जो सुनकर जाना था, आज वही प्रत्यक्ष हुआ ।
केवलियो के लिए कभी क्या, कोई पक्ष विपक्ष हुआ ।।
केवलियों के द्वारा ही तो, प्ररूपणाऐ होती सत्य ।
केवलियो के द्वारा ही तो, जाना जाता कथ्य अकथ्य ।।
जड़ चेतन तत्त्वो की चर्चा, केवलियों से स्पष्ट हुई ।
सुगुरु सुदेव सुधर्म रत्न पर, पड़ी धूलि परिनष्ट हुई ।।
अध्रुव अखिल अवस्थाऐ है, द्रव्य निखिल ध्रुव दीख रहे ।
पर्यायान्तर अध्रुवता पर, क्षण क्षण जाते चीख रहे ।।

जम्बू का परिर्वाण

अपने पद पर प्रभव शिष्य को, बिठलाते जम्बू स्वामी ।
पद से चिपके रहो नही यह, सिखलाते जम्बू स्वामी ।।

चम्मालीस वर्ष तक विचरे, केवलज्ञानी बन करके ।
मेघ विचरते गगनांगण में, ज्यों जलदानी बन करके ।।
परिनिर्वाण समय पहचाना, आए गिरि वेभार जहां ।
स्वागत और विदाई भाई, होती क्या स्वीकार वहां ।।
धीरे-धीरे चढे शिखर पर, चढना कोई सरल नहीं ।
धातु द्रव्य भी एकवार में, हो पाते ज्यों खरल नही ।।
मेघ सरीखे शिला पट्ट का, प्रतिलेखन करते स्वयमेव ।
ऐसे शिलापट्ट पर अक्सर, सन्निपात करते है देव ।।
जीने मरने का आकांक्षा-रहित, सहित श्रुत-केवल से ।
निर्मल कभी किया जाता क्या, शुद्धि प्राप्त जल को जल से ।।
मास[1] भक्त संथारे द्वारा, सिद्ध बुद्ध परिमुक्त बने ।
द्विरुपयोग की धाराओ से, सदा काल संयुक्त बने ।।
सोलह वर्ष गृहस्थ रहे फिर, बीस वर्ष छद्मस्थ रहे ।
चम्मालीस वर्ष तक केवल - ज्ञानी बनकर स्वस्थ रहे ।।
जम्बूस्वामी के जाने से ये दश[2] बातें रही नही ।
जो कुछ कही गई पहले ही, अधिक अल्प अब कही नही ।।

चरित्र समापन

श्री जम्बू स्वामी का जीवन, हो जाता है यही समाप्त ।
नये लेखकों और पाठकों के, हित सामग्री पर्याप्त ।।
पुष्कर मुनि लिखने की अभिरुचि, विकसित हुई विशेष यहां ।
नये क्षेत्र के नये देश के, लिए पुराने वेष कहां ।।

---

१ मासिएण भत्तेण अपाणएण जाव सिद्धे ।

—जम्बू चरित्र (प्राकृत) जिन विजयकृत

२ परमोही १ मणपज्जवनाण २ केवलनाण ३ पुलायलद्धी ४ आहारगसरीर ५ उवसमसेणी ६ खवगसेणी ७ जिणकप्पे ८ सजमतिय ९ सिद्धिगमण च १० ।

— जम्बू चरित्र (प्राकृत) जिनविजयकृत

भाषा नई नई उपमाऐ, नया लावणी छन्द भला ।
कला सहित जीवन जीने का, मिलता है आनन्द भला ॥
आत्मसाधना में सहयोगी, श्रवणबेलगोला का स्थान ।
जहां बाहुबलि की प्रतिमा है, दर्शनीय अप्रतिम महान ॥
सुहावनी फूलो की नगरी, पुर मैसूर अधिक मशहूर ।
पादविहारी श्रमणो से अब, रहा प्रदेश कौन सा दूर ॥
समशीतोष्ण वायु जलवाला, बेंगलोर अति भव्याकार ।
जहा साधु संतो के द्वारा, होता धर्म-प्रचार-विचार ॥
वर्षावास इसी वत्सर का, मैंने यहां बिताया है ।
हुए अर्धशत मासखमण, इतिहास नवीन बनाया है ॥
स्थानकवासी आचार्यों में हुए अमरसिंहजी आचार्य ।
लिए हमारे किया जिन्होंने, प्रभावना का ऊँचा कार्य ॥
तारा गुरु कहने को तारा, किन्तु चन्द्र सम अत्युज्ज्वल ।
उनके नाम स्मरण से पाता, पुष्कर अपनी विधि मे बल ॥
द्विसहस्र चौतीस अब्द का बेंगलोर में वर्षावास ।
आत्म-भाव का जन मानस में, प्रतिदिन होता रहा विकास ॥
शिष्य प्रशिष्यो से पाया है, सेवा का सुन्दर सहयोग ।
स्थान रहेगा स्मृति-कोश में आगम में जैसे अनुयोग ॥
ज्ञानपंचमी ने पाया है, पूर्णाहुति का श्रेय महान ।
तिथियो-वारो का होता है, पुष्कर अपना-अपना स्थान ॥

दोहा

पाया है संपूर्णता, सप्तम स्तम्भ पवित्र ।
जम्बू स्वामी का हुआ, चित्रित पूर्ण चरित्र ॥
ले इस जीवन चरित से, गुण मुक्ताफल ग्राह्य ।
अवलोके सौहार्द से, इसकी आकृति बाह्य ॥

क्षमा करेंगे विज्ञजन, देख कही पर भूल ।
रहती सुधियो के लिए, मार्ग यही अनुकूल ॥
देखें कहीं विशेषता, लें आनन्द विशेष ।
गुणी पुरुष गुण ग्रहण का, देते नित उपदेश ॥
जम्बू जीवन का नहीं, करें कही अपमान ।
शासन की अपभ्राजना, माना पाप महान ॥
अपनी प्रतिभा का करे पुष्कर नया प्रयोग ।
जैसे मैं प्रेरित हुआ, प्रेरित हों सब लोग ॥
अपनी कृति आकृति किसे, लगती कहो खराब ।
बने हुए पुष्कर सभी, अपने लिए नवाब ॥
शुभ कार्यो में समय का, बहुत बड़ा सहयोग ।
समय विना कुछ भी नही, कर पाते हम लोग ॥
शुभ स्याही शुभ लेखिनी, शुभ वेला नक्षत्र ।
पुष्कर की शुभ भावना, दिखा रहे शुभ पत्र ॥
कर्म निर्जरा के लिए, लिखा गया यह ग्रंथ ।
कर्म निर्जरा का न क्यों, दिखलायेगा पंथ ॥

॥ इति सप्तम स्तंभ ॥